ॐ

नमः सिद्धेभ्य

आचार्य प्रवर कुंदकुंद देव विरचित

अष्ट पाहुड जी

विषय सूची

क्र.	ग्रंथ का नाम	पृष्ठ क्रमांक (pdf page)
1	दर्शन पाहुड जी	3 - 41
2	सूत्र पाहुड जी	42 - 71
3	चारित्र पाहुड जी	72 - 117
4	बोध पाहुड जी	118 - 174
5	भाव पाहुड जी	175 - 340
6	मोक्ष पाहुड जी	341 - 448
7	लिंग पाहुड जी	449 - 473
8	शील पाहुड जी	474 - 516

“

ॐ

नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव

विरचित

दर्शन पाहुड जी

”

#1

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेण ॥ १ ॥

कर नमन जिनवर वृषभ एवं वीर श्री वर्धमान को।
संक्षिप्त दिग्दर्शन यथाक्रम करूँ दर्शनमार्ग का ॥१॥

कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वालों में वृषभ-श्रेष्ठ श्री वर्धमान भगवान् को, अथवा गणादि गुणों से वर्धमान -निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले जिनवरवृषभ-भगवान् वृषभ देव प्रथम तीर्थंकर अथवा समस्त तीर्थंकरों को नमस्कार कर मैं(कुंदकुंद देव) अनुक्रम से संक्षेप में दर्शन के मार्ग (मोक्षमार्ग) का स्वरुप कहूँगा।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥2॥

सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा ।
हे कानवालो सुनो ! दर्शनहीन वंदन योग्य ना ॥२॥

जिनवर जो सर्वज्ञदेव हैं, उन्होंने शिष्य जो गणधर आदिक को धर्म का उपदेश दिया है; कैसा उपदेश दिया है ? कि दर्शन जिसका मूल है। मूल कहाँ होता है कि जैसे मन्दिर की नींव और वृक्ष की जड़ होती है, उसीप्रकार धर्म का मूल दर्शन है। इसलिए आचार्य उपदेश देते हैं कि हे सकर्ण अर्थात् सत्पुरुषो! सर्वज्ञ के कहे हुए उस दर्शनमूलरूप धर्म को अपने कानों से सुनकर जो दर्शन से रहित हैं, वे वंदन योग्य नहीं हैं; इसलिए दर्शनहीन की वंदना मत करो। जिसके दर्शन नहीं है, उसके धर्म भी नहीं है, क्योंकि मूलरहित वृक्ष के स्कन्ध, शाखा, पुष्प फलादिक कहाँ से होंगे? इसलिए यह उपदेश है कि जिसके धर्म नहीं है, उससे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर धर्म के निमित्त उसकी वंदना किसलिए करें ?

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ॥3॥

दृगभ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना ।
हों सिद्ध चारित्रभ्रष्ट पर दृगभ्रष्ट को निर्वाण ना ॥३॥

जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं; जो दर्शन से भ्रष्ट हैं उनको निर्वाण नहीं होता; क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि जो चारित्र से भ्रष्ट हैं, वे तो सिद्धि को प्राप्त होते हैं, परन्तु जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ॥४॥

जो जानते हों शास्त्र सब पर भ्रष्ट हों सम्यक्त्व से ।
घूमें सदा संसार में आराधना से रहित वे ॥४॥

जो पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्न से भ्रष्ट है तथा अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं, तथापि वह आराधना से रहित होते हुए संसार में ही भ्रमण करते हैं करते हैं। दो बार कहकर बहुत परिभ्रमण बतलाया है ।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

सम्मत्तविरहिया णं सुठ्ठु वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥5॥

यद्यपि करें वे उग्रतप शत-सहस-कोटि वर्ष तक ।
पर रत्नत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व विरहित साधु सब ॥5॥

जो पुरुष सम्यक्त्व से रहित हैं, वे सुष्ठु अर्थात् भलीभांति उग्र तप का आचरण करते हैं, तथापि वे बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन- ज्ञान चारित्र मय जो अपना स्वरूप है उसका लाभ प्राप्त नहीं करते; यदि हजार कोटि वर्ष तक तप करते रहें, तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

“

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण ।।6।।

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान बल अर वीर्य से वर्धमान जो ।
वे शीघ्र ही सर्वज्ञ हों, कलिकलुसकल्मस रहित जो ।।६।।

जो पुरुष सम्यक्त्वज्ञान, दर्शन, बल, वीर्य से वर्द्धमान हैं तथा कलिकलुषपाप अर्थात् इस पञ्चमकाल के मलिन पाप से रहित हैं, वे सभी अल्पकाल में वरज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी होते हैं।

”

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं बन्धुच्चिय णासए तस्स ॥7॥

सम्यक्त्व की जलधार जिनके नित्य बहती हृदय में
वे कर्मरज से ना बंधे पहले बंधे भी नष्ट हों ॥७॥

जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवर्त्तमान है, उसके कर्मरूपी रज-धूल का आवरण नहीं लगता तथा पूर्वकाल में जो कर्मबंध हुआ हो वह भी नाश को प्राप्त होता है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#8

"

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य ।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति ॥8॥

जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं ।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ॥८॥

जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट हैं वे ज्ञान और चारित्र से भी भ्रष्ट हैं, वे भ्रष्टों में भी अतिभ्रष्ट हैं और अन्य मनुष्यों को भ्रष्ट कर उनका भी विनाश करते हैं ।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#१

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोगगुणधारी।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिति ॥१॥

तप शील संयम व्रत नियम अर योग गुण से युक्त हों
फिर भी उन्हें वे दोष दें जो स्वयं दर्शन भ्रष्ट हों ॥१॥

जो किसी भी, धर्मशील-धर्म के अभ्यासियों, संयम ,तप, नियम , योग और [गुणधारी] गुणों से युक्त महापुरुषों में मिथ्या दोषरोपण करते है वे स्वयं तो चरित्र से पतित हैं दूसरों को भी पतित कर देते हैं।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#10

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति ॥10॥

जिस तरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना
बस उस तरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना ॥१०॥

जिस प्रकार जड़ के नष्ट होने से वृक्ष के परिवार की अभीवृद्धि नही होती उसी प्रकार जिन दर्शन अर्थात अरिहंत भगवान के मत से भ्रष्ट, मूल से विनष्ट है / जड़ से रहित है उन की सिद्धि नही होती अर्थात मोक्ष नही प्राप्त होता।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#11

जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स ॥11॥

मूल ही है मूल ज्यों शाखादि द्रुम परिवार का ।
बस उस तरह ही मुक्तिमग का मूल दर्शन को कहा ॥११॥

जिस प्रकार जड़ से वृक्ष का स्कंध और शाखाओं का परिवार वृद्धि आदि अनेक गुणों से युक्त होता है वैसे ही जिनदर्शन अथवा जिनेन्द्रदेव का प्रगाढ़ श्रद्धान मोक्ष मार्ग का मूल कारण कहा है ।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं ।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं ।।12।।

चाहें नमन दृगवन्त से पर स्वयं दर्शनहीन हों ।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-पग हीन हों ।।१२।।

जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं तथा अन्य जो दर्शन के धारक हैं, उन्हें अपने पैरों पड़ाते हैं, नमस्कारादि कराते हैं, वे परभव में लूले, मूक होते हैं और उनके बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान- चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#13

"

जे वि पडंति य तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥13॥

जो लाज गारव और भयवश पूजते दृगभ्रष्ट को ।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो ॥१३॥

जो पुरुष दर्शन सहित हैं वे भी जो दर्शन भ्रष्ट हैं उन्हें मिथ्यादृष्टि जानते हुए भी उनके पैरों पड़ते हैं, उनकी लज्जा, भय, गारव से विनयादि करते हैं, उनके भी बोधि अर्थात् दर्शन-ज्ञान- चारित्र की प्राप्ति नहीं है, क्योंकि वे भी मिथ्यात्व जो कि पाप है उसका अनुमोदन करते हैं करना,कराना, अनुमोदन करना समान कहे हैं।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

दुविहं पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि ॥१४॥

त्रैयोग से हों संयमी निर्ग्रन्थ अन्तर-बाह्य से ।
त्रिकरण शुध अर पाणिपात्री मुनीन्द्रजन दर्शन कहें ॥१४॥

जहाँ बाह्याभ्यंतर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो तथा कृत-कारित अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों वह ज्ञान हो तथा निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे, ऐसे खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे, इसप्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ॥15॥

सम्यक्त्व से हो ज्ञान सम्यक् ज्ञान से सब जानना ।
सब जानने से ज्ञान होता श्रेय अर अश्रेय का ॥१५॥

सम्यक्त्व से तो ज्ञान सम्यक् होता है तथा सम्यक्ज्ञान से सर्व पदार्थों की उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति अर्थात् जानना होता है तथा पदार्थों की उपलब्धि होने से श्रेय अर्थात् कल्याण और अश्रेय अर्थात् अकल्याण इन दोनों को जाना जाता है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ॥16॥

श्रेयाश्रेय के परिज्ञान से दुःशील का परित्याग हो ।
अर शील से हो अभ्युदय अर अन्त में निर्वाण हो ॥१६॥

कल्याण और अकल्याणमार्ग को जाननेवाला पुरुष "उद्धतदुःशीलः" अर्थात् जिसने मिथ्यात्वभाव को उड़ा दिया है ऐसा होता है तथा "शीलवानपि " अर्थात् सम्यक्स्वभावयुक्त भी होता है तथा उस सम्यक् स्वभाव के फल से अभ्युदय को प्राप्त होता है, तीर्थंकरादि पद प्राप्त करता है तथा अभ्युदय होने के पश्चात् निर्वाण को प्राप्त होता है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ।।17।।

जिनवचन अमृत औषधी जरमरणव्याधि के हरण ।
अर विषयसुख के विरेचक हैं सर्वदुःख के क्षयकरण ।।१७।।

यह जिनवचन हैं सो औषधि हैं। कैसी औषधि हैं? कि इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाले हैं। पुनश्च कैसे हैं अमृतभूत अर्थात् अमृत समान हैं। और इसीलिए जरामरणरूप रोग को हरनेवाले हैं तथा सर्व दुःखों का क्षय करनेवाले हैं।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#18

एगं जिणस्स रूवं बिदियं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि ।।18।।

एक जिनवर लिंग है उत्कृष्ट श्रावक दूसरा ।
अर कोई चौथा है नहीं, पर आर्यिका का तीसरा ।।१८।।

दर्शन में एक तो जिनका स्वरूप है; वहाँ जैसा लिंग जिनदेव ने धारण किया वही लिंग है तथा दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का लिंग है और तीसरा 'अवरस्थित' अर्थात् जघन्यपद में स्थित ऐसी आर्यिकाओं का लिंग है तथा चौथा लिंग दर्शन में है नहीं ।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#19

"

छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥१॥

छह द्रव्य नव तत्त्वार्थ जिनवर देव ने जैसे कहे ।
है वही सम्यग्दृष्टि जो उस रूप में ही श्रद्धहै ॥१९॥

छह द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व यह जिनवचन में कहे हैं, उनके स्वरूप का जो श्रद्धान करे उसे सम्यग्दृष्टि जानना ।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥20॥

जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है ।
पर नियतनय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥२०॥

जिन भगवान ने जीव आदि पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और अपने आत्मा के ही श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व कहा है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#21

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥2॥

जिनवरकथित सम्यक्त्व यह गुण रतनत्रय में सार है ।
सद्भाव से धारण करो यह मोक्ष का सोपान है ॥२१॥

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर देव का कहा हुआ दर्शन है सो गुणों में और दर्शन-ज्ञान- चारित्र इन तीन रत्नों में सार है- उत्तम है और मोक्षमन्दिर में चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी है, इसलिए आचार्य कहते हैं कि हे भव्यजीवो ! तुम इसको अंतरंग भाव से धारण करो, बाह्य क्रियादिक से धारण करना तो परमार्थ नहीं है, अंतरंग की रुचि से धारण करना मोक्ष का कारण है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दमाणस्स सम्मत्तं ॥22॥

जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें ।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें ॥२२॥

जो कार्य किया या सकता है वह करे और जो नही कर सकते उसका श्रद्धान करे। केवलि, जिनेन्द्र भगवान ने कहा है की श्रद्धान करने वाला सम्यकत्व से युक्त, सम्यदृष्टि है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं ॥23॥

ज्ञान दर्शन चरण में जो नित्य ही संलग्न हैं ।
गणधर करें गुण कथन जिनके वे मुनीजन वंद्य हैं ॥२३॥

दर्शन - ज्ञान - चारित्र, तप तथा विनय इनमें जो भले प्रकार स्थित हैं, वे प्रशस्त हैं, सराहने योग्य हैं अथवा भले प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं और गणधर आचार्य भी उनके गुणानुवाद करते हैं, अतः वे वन्दने योग्य हैं। दूसरे जो दर्शनादिक से भ्रष्ट हैं और गुणवानों से मत्सरभाव रखकर विनयरूप नहीं प्रवर्तते हैं वे वंदने योग्य नहीं हैं।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो ॥24॥

सहज जिनवर लिंग लख ना नमें मत्सर भाव से,
बस प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं संयम विरोधी जीव वे ॥२४॥

जो सहजोत्पन्न यथाजातरूप को देखकर नहीं मानते हैं, उसका विनय सत्कार प्रीति नहीं करते हैं और मत्सर भाव करते हैं, वे संयमप्रतिपन्न हैं, दीक्षा ग्रहण की है, फिर भी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#25

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठुण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति ॥25॥

अमर वंदित शील मण्डित रूप को भी देखकर ।
ना नमें गारब करें जो सम्यक्त्व विरहित जीव वे ॥२५॥

देवों से वंदने योग्य शीलसहित जिनेश्वरदेव के यथाजातरूप को देखकर जो गौरव करते हैं, विनयादिक नहीं करते हैं, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#26

अस्संजदं ण वन्दे वत्थविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि ॥26॥

असंयमी ना वन्द्य हैं दृगहीन वस्त्रविहीन भी ।
दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नहीं ॥२६॥

असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिए। भावसंयम नहीं हो और बाह्य में वस्त्र रहित हो वह भी वंदने योग्य नहीं है, क्योंकि ये दोनों ही संयम रहित समान हैं, इनमें एक भी संयमी नहीं है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#27

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुतो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ॥27॥

ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की ।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की ॥२७॥

देह को भी नहीं वंदते हैं और कुल को भी नहीं वंदते हैं तथा जातियुक्त को भी नहीं वंदते हैं, क्योंकि गुणरहित हो उसको कौन वंदे ? गुण बिना प्रकट मुनि नहीं, श्रावक भी नहीं है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#28

"

वंदमि तवसावण्णा सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण ॥28॥

गुण शील तप सम्यक्त्व मंडित ब्रह्मचारी श्रमण जो ।
शिवगमन तत्पर उन श्रमण को शुद्धमन से नमन हो ॥२८॥

आचार्य कहते हैं कि जो तप सहित श्रमणपना धारण करते हैं, उनको तथा उनके शील को, उनके गुण को व ब्रह्मचर्य को मैं सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उनके उन गुणों से सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से सिद्धि अर्थात् मोक्ष के प्रति गमन होता है।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#29

चउसट्ठि चमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ॥29॥

चौंसठ चमर चौंतीस अतिशय सहित जो अरहंत हैं।
वे कर्मक्षय के हेतु सबके हितैषी भगवन्त हैं ॥२९॥

जो चौंसठ चंवरों से सहित हैं, चौंतीस अतिशय सहित हैं, निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है ऐसे उपदेश के दाता हैं और कर्म के क्षय का कारण हैं ऐसे तीर्थंकर परमदेव हैं, वे वंदने योग्य हैं।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#30

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥30॥

ज्ञान-दर्शन-चरण तप इन चार के संयोग से ।
हो संयमित जीवन तभी हो मुक्ति जिनशासन विषैं ॥३०॥

ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र से इन चारों का समायोग होने पर जो संयमगुण हो उससे जिन शासन में मोक्ष होना कहा है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं ।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ॥31॥

ज्ञान ही है सार नर का और समकित सार है ।
सम्यक्त्व से हो चरण अर चारित्र से निर्वाण है ॥३१॥

पहिले तो इस पुरुष के लिए ज्ञान सार है, क्योंकि ज्ञान से सब हेय उपादेय जाने जाते हैं, फिर उस पुरुष के लिए सम्यक्त्व निश्चय से सार है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है, सम्यक्त्व से चारित्र होता है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना चारित्र भी मिथ्या है, चारित्र से निर्वाण होता है।

"

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#32

“

णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
चउण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो ॥32॥

सम्यक्पने परिणमित दर्शन ज्ञान तप अर आचरण ।
इन चार के संयोग से हो सिद्ध पद सन्देह ना ॥३२॥

ज्ञान और दर्शन के होने पर सम्यक्त्व सहित तप करके चारित्रपूर्वक इन चारों का समायोग होने से जीव सिद्ध हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

”

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#33

कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं।
सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए ॥33॥

समकित रतन है पूज्यतम सब ही सुरासुर लोक में ।
क्योंकि समकित शुद्ध से कल्याण होता जीव का ॥३३॥

जीव विशुद्ध सम्यक्त्व को कल्याण की परम्परा सहित पाते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन रत्न है वह इस सुर-असुरों से भरे हुए लोक में पूज्य है।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

लद्धूण य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गोत्तेण।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसोक्खं च मोक्खं च ॥34॥

प्राप्तकर नरदेह उत्तम कुल सहित यह आतमा ।
सम्यक्त्व लह मुक्ति लहे अर अखय आनन्द परिणमे ॥३४॥

उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपना प्रत्यक्ष प्राप्त करके और वहां सम्यक्त्व प्राप्त करके अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान प्राप्त करते हैं तथा उस सुखसहित मोक्ष प्राप्त करते हैं।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#35

विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीसअइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया ॥35॥

हजार अठ लक्षण सहित चौंतीस अतिशय युक्त जिन ।
विहरैं जगत में लोकहित प्रतिमा उसे थावर कहें ॥३५॥

केवलज्ञान होने के बाद जिनेन्द्र भगवान जबतक इस लोक में आर्यखंड में विहार करते हैं, तब तक उनकी वह प्रतिमा अर्थात् शरीर सहित प्रतिबिम्ब उसको 'थावर प्रतिमा' इस नाम से कहते हैं।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#36

बारसविहतवजुत्त कम्मं खविऊण विहिबलेण सं।
वोसट्टचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता ॥36॥

द्वादश तपों से युक्त क्षयकर कर्म को विधिपूर्वक ।
तज देह जो व्युत्सर्ग युत, निर्वाण पावें वे श्रमण ॥३६॥

जो बारह प्रकार के तप से संयुक्त होते हुए विधि के बल से अपने कर्म को नष्ट कर 'वोसट्टचत्तदेहा' अर्थात् जिन्होंने भिन्न कर छोड़ दिया है देह, ऐसे होकर वे अनुत्तर अर्थात् जिससे आगे अन्य अवस्था नहीं है, ऐसी निर्वाण अवस्था को प्राप्त होते हैं।

दर्शन पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव
विरचित

दर्शन पाहुड जी

”

“

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

”

ॐ नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

सूत्र पाहुड जी

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥1॥

अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन ।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन ॥१॥

अरिहंत देव द्वारा प्रतिपादित अर्थमय, गणधर देव द्वारा सम्यक रूप से / पूर्वापरविरोधरहित गुथित (गुम्फन किया) तथा शास्त्र के अर्थ को खोजने वाले, सूत्रों से श्रमण अपने परमार्थ को साधते हैं।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपूरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टदि सिवमग्ग जो भव्वो ॥2॥

जो भव्य हैं वे सूत्र में उपदिष्ट शिवमग जानकर ।
जिनपरम्परा से समागत शिवमार्ग में वर्तन करें ॥२॥

सर्वज्ञभाषित सूत्र में जो कुछ भले प्रकार कहा है, उसको आचार्यों की परम्परारूप मार्ग से दो प्रकार के सूत्र को शब्दमय और अर्थमय जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है, वह भव्यजीव है, मोक्ष पाने के योग्य है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#3

सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्तेण सहा णो वि ॥3॥

डोरा सहित सुइ नहीं खोती गिरे चाहे वन-भवन ।
संसार-सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण ॥३॥

जो पुरुष सूत्र को जाननेवाला है, प्रवीण है, वह संसार में जन्म होने का नाश करता है, जैसे लोह की सूई सूत्र (डोरा) के बिना हो तो नष्ट (गुम) हो जाय और डोरा सहित हो तो नष्ट नहीं हो, यह दृष्टान्त है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#4

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेदण पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥५॥

संसार में गत गृहीजन भी सूत्र के ज्ञायक पुरुष ।
निज आतमा के अनुभवन से भवोदधि से पार हों ॥४॥

जैसे सूत्रसहित सूई नष्ट नही होती है वैसे ही जो पुरुष संसार में गत हो रहा है, अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नही है तो भी वह सूत्रसहित हो (सूत्र का ज्ञाता हो) तो उसके आत्मा सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आता है, इसलिए गत नहीं है, नष्ट नहीं हुआ है, वह जिस संसार में गत है, उस संसार का नाश करता है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥5॥

जिनसूत्र में जीवादि बहुविध द्रव्य तत्त्वारथ कहे ।
हैं हेय पर व अहेय निज जो जानते सद्दृष्टि वे ॥5॥

सूत्र का अर्थ जिन सर्वज्ञ देव ने कहा है और सूत्र का अर्थ जीव अजीव आदि बहुत प्रकार है तथा हेय अर्थात् त्यागने योग्य पुद्गलादिक और अहेय अर्थात् त्यागने योग्य नहीं इस प्रकार आत्मा को जो जानता है वह प्रगट सम्यग्दृष्टि है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥6॥

परमार्थ या व्यवहार जो जिनसूत्र में जिनवर कहे ।
सब जान योगी सुख लहें मलपुंज का क्षेपण करें ॥६॥

जो जिनभाषित सूत्र है, वह व्यवहाररूप तथा परमार्थरूप है, उसको योगीश्वर जानकर सुख पाते हैं और मलपुंज अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का क्षेपण करते हैं।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स ॥7॥

सूत्रार्थ से जो नष्ट हैं वे मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं ।
तुम खेल में भी नहीं धरना यह सचेलक वृत्तियाँ ॥७॥

जिसके सूत्र का अर्थ और पद विनष्ट है वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है इसीलिए जो सचेल है, वस्त्रसहित है उसको 'खेडे वि' अर्थात् हास्य कुतूहल में भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र से आहारदान नहीं करना।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#8

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥8॥

सूत्र से हों भ्रष्ट जो वे हरहरी सम क्यों न हों ।
स्वर्गस्थ हों पर कोटि भव अटकत फिरें ना मुक्त हों ॥८॥

जो मनुष्य सूत्र के अर्थ पद से भ्रष्ट है, वह हरि अर्थात् नारायण हर अर्थात् रुद्र इनके समान भी हो, अनेक ऋद्धि संयुक्त हो तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। यदि कदाचित् दान पूजादिक करके पुण्य उपार्जन कर स्वर्ग चला जावे तो भी वहाँ से चय कर करोड़ों भव लेकर संसार ही में रहता है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#१

उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छदि होदि मिच्छत्तं ॥९॥

सिंह सम उत्कृष्टचर्या हो तपी गुरु भार हो ।
पर हो यदी स्वच्छन्द तो मिथ्यात्व है अर पाप हो ॥९॥

जो मुनि होकर उत्कृष्ट सिंह के समान निर्भय हुआ आचरण करता है और बहुत परिकर्म अर्थात् तपश्चरणादिक्रिया विशेषों से युक्त है तथा गुरु के भार अर्थात् बड़ा पदस्थरूप है, संघ नायक कहलाता है, परन्तु जिनसूत्र से च्युत होकर स्वच्छंद प्रवर्तता है तो वह पाप ही को प्राप्त होता है और मिथ्यात्व को प्राप्त होता है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥10॥

निश्चेल एवं पाणिपात्री जिनवरेन्द्रों ने कहा ।
बस एक है यह मोक्षमारग शेष सब उन्मार्ग हैं ॥१०॥

जो निश्चेल अर्थात् वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रास्वरूप और पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्र में खड़े-खड़े आहार करना इस प्रकार एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्र ने उपदेश दिया है, इसके सिवाय अन्य रीति सब अमार्ग हैं।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#11

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥११॥

संयम सहित हों जो श्रमण हों विरत परिग्रहारंभ से ।
वे वन्द्य हैं सब देव-दानव और मानुष लोक से ॥११॥

जो दिगम्बर मुद्रा का धारक मुनि इन्द्रिय -मन को वश में करना, छह काय के जीवों की दया करना इस प्रकार संयम सहित हो और आरम्भ अर्थात् गृहस्थ के सब आरम्भों से तथा बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से विरक्त हो इनमें नहीं प्रवर्ते तथा आदि शब्द से ब्रह्मचर्य आदि गुणों से युक्त हो वह देव-दानव सहित मनुष्यलोक में वंदने योग्य है, अन्य भेषी परिग्रह आरंभादि से युक्त पाखण्डी (ढोंगी) वंदने योग्य नहीं है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू ।।12।।

निजशक्ति से सम्पन्न जो बाइस परीषह को सहें ।
अर कर्म क्षय वा निर्जरा सम्पन्न मुनिजन वंद्य हैं ।।१२।।

जो साधु मुनि अपनी शक्ति के सैंकड़ों से युक्त होते हुए क्षुधा, तृषादिक बाईस परीषहों को सहते हैं और कर्मों की क्षयरूप निर्जरा करने में प्रवीण हैं, वे साधु वंदने योग्य हैं।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#13

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जा य ॥13॥

अवशेष लिंगी वे गृही जो ज्ञान दर्शन युक्त हैं ।
शुभ वस्त्र से संयुक्त इच्छाकार के वे योग्य हैं ॥१३॥

दिगम्बरमुद्रा सिवाय जो अवशेष लिंगी भेष संयुक्त और सम्यक्त्व सहित दर्शन ज्ञान संयुक्त हैं तथा वस्त्र से परिगृहीत हैं, वस्त्र धारण करते हैं वे इच्छाकार करने योग्य हैं।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#14

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होदि ॥।।५।।

मर्मज्ञ इच्छाकार के अर शास्त्र सम्मत आचरण ।
सम्यक् सहित दुष्कर्म त्यागी सुख लहें परलोक में ॥१४॥

जो पुरुष जिनसूत्र में तिष्ठता हुआ इच्छाकार शब्द के महान प्रधान अर्थ को जानता है और स्थान जो श्रावक के भेदरूप प्रतिमाओं में तिष्ठता हुआ सम्यक्त्व सहित वर्तता है, आरंभ आदि कर्मों को छोड़ता है, वह परलोक में सुख प्रदान करने वाला होता है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ।।15।।

जो चाहता नहिं आतमा वह आचरण कुछ भी करे ।
पर सिद्धि को पाता नहीं संसार में भ्रमता रहे ।।१५।।

सो जिसे आत्मा नहीं इच्छता (आत्मा की भावना नही करता), वह बाकी समस्त धार्मिक अनुष्ठान - दान, पूजादि करता हो, फिर भी सिद्धि नहीं प्राप्त करता, वह फिर संसारी ही कहा गया है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ॥16॥

बस इसलिए मन वचन तन से आत्म की आराधना ।
तुम करो जानो यत्न से मिल जाय शिवसुख साधना ॥१६॥

हे भव्यजीवो! तुम उस आत्मा की श्रद्धा करो, उसका श्रद्धान करो, मन वचन काय से स्वरूप में रुचि करो, इसकारण से मोक्ष को पाओ और जिससे मोक्ष पाते हैं उसको प्रयत्न द्वारा सब प्रकार के उद्यम करके जानो।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

वालग्गकोडिमेत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥17॥

बालाग्र के भी बराबर ना परीग्रह हो साधु के ।
अर अन्य द्वारा दत्त पाणीपात्र में भोजन करें ॥१७॥

साधु के बाल के अग्रभागमात्र भी परिग्रह ग्रहण नहीं है उन्हे अन्न के दिये हुए आहार को करपात्र में एक स्थान पर लेना चाहिये।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#18

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण णिग्गोदम् ॥18॥

जन्मते शिशुवत् अकिंचन नहीं तिल-तुष हाथ में ।
किंचित् परीग्रह साथ हो तो श्रमण जाँयें निगोद में ॥१८॥

मुनि यथाजातरूप है जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होता है, वैसे ही नग्नरूप दिगम्बर - मुद्रा का धारक है, वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता है और यदि कुछ थोड़ा बहुत लेवे ग्रहण करे तो वह मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥१९॥

थोड़ा-बहुत भी परिग्रह हो जिस श्रमण के पास में ।
वह निन्द्य है निर्ग्रन्थ होते जिनश्रमण आचार में ॥१९॥

जिसके मत में लिंग जो भेष उसके परिग्रह का अल्प तथा बहुत ग्रहण करना कहा है, वह मत तथा उसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है, निंदायोग्य है, क्योंकि जिनवचन में परिग्रह रहित ही निरागार है, निर्दोष मुनि है, इसप्रकार कहा है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

पंचमहव्वयजुत्ते तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ॥20॥

महाव्रत हों पाँच गुप्ती तीन से संयुक्त हों ।
निरग्रन्थ मुक्ती पथिक वे ही वंदना के योग्य हैं ॥२०॥

जो मुनि पंच महाव्रत युक्त हो और तीन गुप्ति संयुक्त हो वह संयत है, संयमवान है और निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है तथा वह ही प्रगट निश्चय से वंदने योग्य है।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#21

दुइयं च उत्त लिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण ॥21॥

जिनमार्ग में उत्कृष्ट श्रावक लिंग होता दूसरा ।
भिक्षा ग्रहण कर पात्र में जो मौन से भोजन करे ॥२१॥

द्वितीय लिंग अर्थात् दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावक जो गृहस्थ नहीं है, इसप्रकार उत्कृष्ट श्रावक का कहा है, वह उत्कृष्ट श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है, वह भ्रमण करके भिक्षा द्वारा भोजन करे और पत्ते अर्थात् पात्र में भोजन करे तथा हाथ में करे और समितिरूप प्रवर्तता हुआ भाषासमितिरूप बोले अथवा मौन से रहे।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंड सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेदि ।।22।।

अर नारियों का लिंग तीजा एक पट धारण करें ।
वह नग्न ना हो दिवस में इकबार ही भोजन करें ।।२२।।

स्त्रियों का लिंग इसप्रकार है- एक काल में भोजन करे, बारबार भोजन नहीं करे, आर्यिका भी हो तो एक वस्त्र धारण करे और भोजन करते समय भी वस्त्र के आवरण सहित करे, नग्न नहीं हो।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#23

ण वि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ।।23।।

सिद्ध ना हो वस्त्रधर वह तीर्थंकर भी क्यों न हो ।
बस नग्नता ही मार्ग है अर शेष सब उन्मार्ग हैं ।।२३।।

जिनशासन में इस प्रकार कहा है कि वस्त्र को धारण करनेवाला सीझता नहीं है, मोक्ष नहीं पाता है, यदि तीर्थंकर भी हो तो जबतक गृहस्थ रहे तबतक मोक्ष नहीं पाता है, दीक्षा लेकर दिगम्बररूप धारण करे तब मोक्ष पावे; क्योंकि नग्नपना ही मोक्षमार्ग है, शेष सब लिंग उन्मार्ग हैं।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#24

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥24॥

नारियों की योनि नाभी काँख अर स्तनों में ।
जिन कहे हैं बहु जीव सूक्षम इसलिए दीक्षा न हो ॥२४॥

स्त्रियों के लिंग अर्थात् योनि में, स्तनांतर अर्थात् दोनों कुचों के मध्य प्रदेश में तथा कक्ष अर्थात् दोनों काँखों में, नाभि में सूक्ष्मकाय अर्थात् दृष्टि के अगोचर जीव कहे हैं, अतः इसप्रकार स्त्रियों के प्रव्ज्या अर्थात् दीक्षा कैसे हो ?

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जइ दंसणेण सुद्धा उत्त मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पव्वया भणिया ॥25॥

पर यदी वह सद्दृष्टि हो संयुक्त हो जिनमार्ग में ।
सद्आचरण से युक्त तो वह भी नहीं है पापमय ॥२५॥

स्त्रियों में जो स्त्री दर्शन अर्थात् जिनमत की श्रद्धा से शुद्ध है, वह भी मार्ग से संयुक्त कही गई है। जो घोर चारित्र तीव्र तपश्चरणादिक आचरण से पापरहित होती है, इसलिए उसे पापयुक्त नहीं कहते हैं।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#26

चित्तसोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा ॥26॥

चित्तशुद्धी नहीं एवं शिथिलभाव स्वभाव से ।
मासिकधरम से चित्त शंकित रहे वंचित ध्यान से ॥२६॥

उन स्त्रियों के चित्त की शुद्धता नही है, वैसे ही स्वभाव ही से उनके ढीला भाव है, शिथिल परिणाम हैं और उनके मासा अर्थात् मास मास में रुधिर का स्राव विद्यमान है, उसकी शंका रहती है उससे स्त्रियों के ध्यान नही है ।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#27

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ॥27॥

जलनिधि से पटशुद्धिवत जो अल्पग्राही साधु हैं ।
हैं सर्व दुख से मुक्त वे इच्छा रहित जो साधु हैं ॥२७॥

जो मुनि ग्राह्य अर्थात् ग्रहण करने योग्य वस्तु आहार आदिक से तो अल्पग्राह्य हैं, थोड़ा ग्रहण करते हैं, जैसे कोई पुरुष बहुत जल से भरे हुए समुद्र में से अपने वस्त्र को धोने के लिए वस्त्र धोनेमात्र जल ग्रहण करता है और जिन मुनियों के इच्छा निवृत्त हो गई उनके सब दुःख निवृत्त हो गये।

सूत्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

सूत्र पाहुड जी

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

“

ॐ नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

चारित्र पाहुड जी

”

#1

सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं ॥1॥
णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं।
मोक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे ॥2॥ युग्मम्

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी अमोही अरिहंत जिन ।
त्रैलोक्य से हैं पूज्य जो उनके चरण में कर नमन ॥१॥
ज्ञान-दर्शन-चरण सम्यक् शुद्ध करने के लिए ।
चारित्रपाहुड़ कहूँ मैं शिवसाधना का हेतु जो ॥२॥

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, निर्मोह, वीतरागी, परमेष्ठी; त्रिजगत द्वारा वन्दित, और भव्यजीवों द्वारा वन्दनीय, अरिहंत भगवान् को तथा उसका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र को नमस्कार कर, उनमें मोक्ष प्राप्ति में कारण भूत चारित्र पाहुड को कहता हूँ ।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

“

जं जाणइ तं णाणं जं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स णिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं ॥3॥

जो जानता वह ज्ञान है जो देखता दर्शन कहा ।
समयोग दर्शन-ज्ञान का चारित्र जिनवर ने कहा ॥३॥

जो जानता है वह ज्ञान है और जो प्रतीति करता है वह दर्शन कहा गया है ज्ञान के और दर्शन के सहयोग से चारित्र होता है ।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#3

"

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविहं चारित्तं ॥५॥

तीन ही ये भाव जिय के अखय और अमेय हैं ।
इन तीन के सुविकास को चारित्र दो विध जिन कहा ॥४॥

ये तीनों (ज्ञान, दर्शन और चारित्र) ही भाव / परिणाम जीव / आत्मा के अक्षय / अविनश्वर और अमर्यादित / अनन्तानन्त होते हैं । इन तीनों की ही शुद्धि के लिए, दो प्रकार का चरित्र जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#4

"

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
बिदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि ॥5॥

है प्रथम सम्यक्त्वाचरण जिन ज्ञानदर्शन शुद्ध है ।
है दूसरा संयमचरण जिनवर कथित परिशुद्ध है ॥5॥

प्रथम तो सम्यक्त्व का आचरणस्वरूप चारित्र है, वह जिनदेव के ज्ञान दर्शन श्रद्धान से किया हुआ शुद्ध है। दूसरा संयम का आचरणस्वरूप चारित्र है, वह भी जिनदेव के ज्ञान से दिखाया हुआ शुद्ध है।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

“

एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ।
परिहर सम्मत्तमला जिणभणिया तिविहजोएण ॥6॥

सम्यक्त्व के जो दोष मल शंकादि जिनवर ने कहे ।
मन-वचन-तन से त्याग कर सम्यक्त्व निर्मल कीजिए ॥६॥

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को जानकर मिथ्यात्व कर्म के उदय से हुए शंकादिक दोष सम्यक्त्व को अशुद्ध करनेवाले मल हैं, ऐसा जिनदेव ने कहा है, इनको मन, वचन, काय के तीनों योगों से छोड़ना।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ ॥7॥

निशंक और निकांक्ष अर निर्ग्लान दृष्टि-अमूढ़ है ।
उपगूहन अर थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना ॥७॥

निःशंकित,निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ अंग हैं।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

“

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥४॥

इन आठ गुण से शुद्ध सम्यक् मूलतः शिवथान है ।
सद्ज्ञानयुत आचरण यह सम्यक्चरण चारित्र है ॥८॥

वह जिनसम्यक्त्व अर्थात् अरहंत जिनदेव की श्रद्धा निःशंकित आदि गुणों से विशुद्ध हो उसका यथार्थ ज्ञान के साथ आचरण करे वह प्रथम सम्यक्त्वचरण चारित्र है, वह मोक्ष स्थान के लिए होता है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#8

“

सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं ॥९॥

सम्यक्चरण से शुद्ध अर संयमचरण से शुद्ध हों ।
वे समकिती सद्ज्ञानिजन निर्वाण पावें शीघ्र ही ॥९॥

जो ज्ञानी होते हुए अमूढदृष्टि होकर सम्यक्त्वाचरण चारित्र से शुद्ध होता है और जो संयमचरण चारित्र से सम्यक् प्रकार शुद्ध हो तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त होता है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#9

“

सम्मत्तचरणभट्ठा संजमचरणं चरंति जे वि णरा।
अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं ॥10॥

सम्यक्चरण से भ्रष्ट पर संयमचरण आचरें जो ।
अज्ञान मोहित मती वे निर्वाण को पाते नहीं ॥१०॥

जो पुरुष सम्यक्त्वाचरण चारित्र से भ्रष्ट हैं और संयम का आचरण करते हैं तो भी वे अज्ञान से मूढदृष्टि होते हुए निर्वाण को नहीं पाते हैं।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#10

"

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गगुणसंसणाए अवगूहण रक्खणाए य ।।11।।
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण ।।12।।

विनयवत्सल दयादानरु मार्ग का बहुमान हो ।
संवेग हो हो उपागूहन स्थितिकरण का भाव हो ।।११।।
अर सहज आर्जव भाव से ये सभी लक्षण प्रगट हों ।
तो जीव वह निर्मोह मन से करे सम्यक् साधना ।।१२।।

मोह रहित अथवा अमोघ (सफल जन्म का धारक) मनुष्य वात्सल्य, विनय,अनुकम्पा, उत्तम दान देने में इच्छुक मोक्ष मार्ग के गुणों में संशय नही करने वाला /उनकी प्रशंसा करने वाला,उपगूहन,और स्थितिकरण, अकुटिल परिणामी भावी, इन-इन लक्षणों और लक्षणों से युक्त मनुष्य जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित सम्यक्त्व का आराधक है।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#11

उच्छाहभावणासंपसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं ।।13।।

अज्ञानमोहित मार्ग की शंसा करे उत्साह से ।
श्रद्धा कुदर्शन में रहे तो बमे सम्यक्भाव को ।।१३।।

जो उत्साह / रूचि भावना पूर्वक मिथ्यामत की श्रद्धा उसकी प्रशंसा, और अज्ञानी जीवों के समान मोध /मोह मार्ग में श्रद्धान रखता है वह जिनसम्यक्त्व को छोड़ देता है ।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

"

उच्छाहभावणासंपसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण ।।।५।।

सद्ज्ञान सम्यक्भाव की शंसा करे उत्साह से ।
श्रद्धो सुदर्शन में रहे ना बमे सम्यक्भाव को ।।१४।।

जो ज्ञान मार्ग अर्थात सम्यग्ज्ञान द्वारा सम्यग्दृष्टियों गुरुओं की उत्साह/रूचि पूर्वक भावना रखता है, उनकी, प्रशंसा, सेवा और श्रद्धान करता है वह जिनसम्यक्त्व को नही छोड़ता।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जह णाणे विसुद्धसम्मत्ते।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए ॥15॥

तज मूढ़ता अज्ञान हे जिय ज्ञान-दर्शन प्राप्त कर ।
मद मोह हिंसा त्याग दे जिय अहिंसा को साधकर ॥१५॥

आचार्य कहते हैं कि हे भव्य ! तू ज्ञान के होने पर तो अज्ञान का त्याग कर, विशुद्ध सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का त्याग कर और अहिंसा लक्षण धर्म के होने पर आरंभसहित मोह को छोड़।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

पव्वज्ज संगचाए पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे
होइ सुविसुद्धझाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते ।।।6।।

सब संग तज ग्रह प्रव्रज्या रम सुतप संयमभाव में ।
निर्मोह हो तू वीतरागी लीन हो शुधध्यान में ।।१६।।

वस्त्रादि परिग्रहों का त्याग कर दीक्षा लेकर उत्तम संयम भाव से उत्कृष्ट तप मे प्रवृत्त हो ।निर्मोही को ही वीतरागी होने पर उत्तम विशुद्धध्यान होता है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

"

मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं।
वज्झंति मूढजीवा मिच्छत्तबुद्धिउदएण ॥17॥

मोहमोहित मलिन मिथ्यामार्ग में ये भूल जिय ।
अज्ञान अर मिथ्यात्व कारण बंधनों को प्राप्त हो ॥१७॥

अज्ञान और मोह दोष से मलिन मिथ्यात्व बुद्धि के उदय में मिथ्यामार्ग पर चलने वाले मूर्ख जीव बंधते (पाप कर्म से) हैं ।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

सम्मद्दंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जा या।
सम्मेण य सद्दहदि य परिहरदि चरित्तजे दोसे ॥॥४॥

सद्ज्ञानदर्शन जानें देखें द्रव्य अर पर्यायों को ।
सम्यक् करे श्रद्धान अर जिय तजे चरणज दोष को ॥१८॥

सम्यग्दृष्टि दर्शन ज्ञान से द्रव्यों और उनकी पर्याय को भली प्रकार देखता जानता है और सम्यक्त्व-गुण से उनका श्रद्धान करता है और चारित्र सम्बन्धी दोषों को दूर करता है।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

“

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
णियगुणमाराहंतो अचिरेण य कम्म परिहरइ ।।19।।

सद्ज्ञानदर्शनचरण होते हैं अमोही जीव को ।
अर स्वयं की आराधना से हरें बन्धन शीघ्र वे ।।१९।।

ये तीनों ही भाव (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) मोह रहित जीव के होते हैं। निज गुणों की आराधना करने वाला अल्प काल में ही कर्मों का क्षय कर लेता है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#18

“

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता णं।
सम्मत्तमणुचरंता करेंति दुक्खक्खयं धीरा ॥20॥

सम्यक्त्व के अनुचरण से दुख क्षय करें सब धीरजन ।
अर करें वे जिय संख्य और असंख्य गुणमय निर्जरा ॥२०॥

सम्यक्त्व का पालन करने वाले और चारित्र का पालन करने वाले संख्यात गुणी असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा करते हुए धैर्यपूर्वक दुखों का क्षय करते हैं । संसारी जीवों से यह निर्जरा मेरु के बराबर है

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#19

दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं ॥2॥

सागार अर अनगार से यह द्विविध है संयमचरण ।
सागार हों सग्रन्थ अर निर्ग्रन्थ हों अणगार सब ॥२१॥

संयम / चारित्राचार के दो भेद सागार और निरागार होते हैं । सागार चारित्राचार परिग्रह सहित (गृहस्थ) के और निरागार चारित्राचार परिग्रह रहित (मुनि) का होता है।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

“

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य।
बंभारंभापरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य ॥22॥

देशव्रत सामायिक प्रोषध सचित निशिभुज त्यागमय ।
ब्रह्मचर्य आरम्भ ग्रन्थ तज अनुमति अर उद्देश्य तज ॥२२॥

दर्शन,व्रत,सामायिक,प्रोषध, सचित्तत्याग ,रात्रीभुक्तीत्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रह-त्याग,अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग, इस प्रकार ग्यारह प्रकार देशविरत अथवा सागार चारित्राचार है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#21

पंचेव णुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥23॥

पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत कहे ।
यह गृहस्थ का संयमचरण इस भांति सब जिनवर कहें ॥२३॥

संयमचरण के सागार-चारित्र में पांच अणुव्रतादि तथा तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत होते हैं।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

“

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभपरिमाणं ॥25॥

त्रसकायवध अर मृषा चोरी तजे जो स्थूल ही ।
परनारि का हो त्याग अर परिमाण परिग्रह का करे ॥२४॥

पांच अणुव्रत -- स्थूल-त्रस काय जीवों का वध, स्थूल असत्य कथन, स्थूल चौर्य और पर स्त्री का त्याग तथा परिग्रह और आरम्भ का परिमाण है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#23

"

दिसिविदि सिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥25॥

दिशि-विदिश का परिमाण दिग्व्रत अर अनर्थकदण्डव्रत ।
परिमाण भोगोपभोग का ये तीन गुणव्रत जिन कहें ॥२५॥

दिशा विदिशा में गमन का परिमाण वह प्रथम गुणव्रत है, अनर्थदण्ड का वर्जना द्वितीय गुणव्रत है और भोगोपभोग का परिमाण तीसरा गुणव्रत है, इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#24

“

सामाइयं च पढमं बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥26॥

सामायिका प्रोषध तथा व्रत अतिथिसंविभाग है ।
सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहे जिनदेव ने ॥२६॥

सामायिक प्रथम और प्रोषधोपवास दूसरा, अतिथि-पूज्य (मुनियों को नवधा भक्ति से आहारादि देना) तीसरा और सल्लेखना -अंत में मृत्यु के समय (शरीर को कषायों को कृष करते हुए त्यागना) चौथा शिक्षाव्रत कहा है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#25

“

एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे ॥27॥

इस तरह संयमचरण श्रावक का कहा जो सकल है ।
अनगार का अब कहूँ संयमचरण जो कि निकल है ॥२७॥

इस प्रकार श्रावक धर्म सकल (परिग्रह सहित) संयमचरण चरित्रासार उपदेशित है, अब शुद्ध निकल (परिग्रह रहित) मुनिधर्म चारित्रसार कहूंगा।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#26

“

पंचेंदियसंवरणं पंच वया पंचविंसकिरियासु।
पंच समिदि तय गुत्ती संजमचरणं णिरायारं ॥24॥

संवरण पंचेन्द्रियों का अर पंचव्रत पच्चिस क्रिया ।
त्रय गुप्ति समिति पंच संयमचरण है अनगार का ॥२८॥

पाँच इन्द्रियों का संवर, पाँच व्रत - ये पच्चीस क्रिया के सद्भाव होने पर होते हैं, पाँच समिति और तीन गुप्ति ऐसे निरागार संयमचरण चारित्र होता है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य।
ण करेदि रायदोसे पंचेंदियसंवरो भणिओ ॥29॥

सजीव हो या अजीव हो अमनोज्ञ हो या मनोज्ञ हो ।
ना करे उनमें राग-रुस पंच इन्द्रियाँ, संवर कहा ॥२९॥

मनोज्ञ (इष्ट) और अमनोज्ञ (अनिष्ट) चेतन द्रव्यों तथा अचेतन द्रव्यों में रागद्वेष नही करना पंचेन्द्रिय संवर (इष्ट विषयों में राग और अनिष्ट में द्वेष नही रहना पंचेन्द्रिय संवर/दमन) कहा है ।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#28

“

हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य ।
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य ॥30॥

हिंसा असत्य अदत्त अब्रह्मचर्य और परिग्रहा ।
इनसे विरति सम्पूर्णतः ही पंच मुनिमहाव्रत कहे ॥३०॥

प्रथम तो हिंसा से विरति अहिंसा है, दूसरा असत्यविरति, तीसरा अदत्त विरति है, चौथा अब्रह्मविरति और पाँचवां परिगृहविरति व्रत है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#29

“

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।
जं च महल्लाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं ॥3॥

ये महाव्रत निष्पाप हैं अर स्वयं से ही महान हैं ।
पूर्व में साधे महाजन आज भी हैं साधते ॥३१॥

क्योंकि महापुरुष इन्हें साधते हैं, पूर्ववर्ती महापुरुषों ने इनका आचरण किया है और क्योंकि स्वयं से महान हैं, इसलिए उन्हें महाव्रत कहते हैं ।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#30

“

वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो
अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति ॥32॥

मनोगुप्ती वचन गुप्ती समिति ईर्या ऐषणा ।
आदाननिक्षेपण समिति ये हैं अहिंसा भावना ॥३२॥

वचनगुप्ति, मन गुप्ति, ईर्यासमिति, सुदान/आदान निक्षेपण समिति और आलोकित पान, अहिंसाव्रत की ६भावनायें हैं।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#31

“

कोहभयहासलोहा मोहा विवरीयभावणा चेव।
विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति ॥33॥

सत्यव्रत की भावनायें क्रोध लोभरु मोह भय ।
अर हास्य से हैं रहित होना ज्ञानमय आनन्दमय ॥३३॥

क्रोध, भय, हास्य, लोभ और मोह इनसे विपरीत अर्थात् उल्टा इनका अभाव ये द्वित्तीय व्रत सत्य महाव्रत की भावना हैं।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

सुण्णायारणिवासो विमोचियावास जं परोधं च।
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मीसंविसंवादो ॥३५॥

हो विमोचितवास शून्यागार हो उपरोध बिन ।
हो एषणाशुद्धी तथा संवाद हो विसंवाद बिन ॥३४॥

शून्यागार अर्थात् गिरि, गुफा, तरु, कोटरादि में निवास करना, विमोचितावास अर्थात् जिसको लोगों ने किसी कारण से छोड़ दिया हो इसप्रकार के गृहग्रामादिक में निवास करना, परोपरोध अर्थात् जहाँ दूसरे की रुकावट न हो, वस्तिकादिक को अपनाकर दूसरे को रोकना, इसप्रकार नहीं करना, एषणाशुद्धि अर्थात् आहार शुद्ध लेना और साधर्मियों से विसंवाद नहीं करना ये पाँच भावना तृतीय महाव्रत की हैं।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि ॥35॥

त्याग हो आहार पौष्टिक आवास महिलावासमय ।
भोगस्मरण महिलावलोकन त्याग हो विकथा कथन ॥३५॥

स्त्रियों का अवलोकन अर्थात् रागभावसहित देखना, पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों को स्मरण करना, स्त्रियों से संसक्त वस्तिका में रहना, स्त्रियों की कथा करना, पौष्टिक रसों का सेवन करना, इन पाँचों से विकार उत्पन्न होता है, इसलिए इनसे विरक्त रहना, ये पाँच ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावना हैं।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

अपरिग्गह समणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति ॥36॥

इन्द्रियों के विषय चाहे मनोज्ञ हों अमनोज्ञ हों ।
नहीं करना राग-रुस ये अपरिग्रह व्रत भावना ॥३६॥

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध ये पाँच इन्द्रियों के विषय समनोज्ञ अर्थात् मन को अच्छे लगनेवाले और अमनोज्ञ अर्थात् मन को बुरे लगनेवाले हों तो इन दोनों में ही राग-द्वेष आदि न करना परिग्रहत्याग व्रत की ये पाँच भावना हैं।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#35

“

इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहिणिमित्तं खंति जिणा पंच समिदीओ ॥37॥

ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण सही ।
एवं प्रतिष्ठापना संयमशोधमय समिती कही ॥३७॥

ईर्ष्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापना, ये पाँच समितियाँ संयम की शुद्धता के लिए कारण हैं, इसप्रकार जिनदेव कहते हैं।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#36

“

भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि ॥38॥

सब भव्यजन संबोधने जिननाथ ने जिनमार्ग में ।
जैसा बताया आतमा हे भव्य ! तुम जानो उसे ॥३८॥

जिनमार्ग में जिनेश्वर देव ने भव्यजीवों के संबोधने के लिए जैसा ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसको हे भव्य जीव ! तू जान।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#37

“

जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ जिणसासणे मोक्खमग्गोत्ति ॥३१॥

जीव और अजीव का जो भेद जाने ज्ञानि वह ।
रागादि से हो रहित शिवमग यही है जिनमार्ग में ॥३९॥

जो पुरुष जीव और अजीव का भेद जानता है वह सम्यग्ज्ञानी होता है और रागादि दोषों से रहित होता है, इसप्रकार जिनशासन में मोक्षमार्ग है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#38

दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं ॥40॥

तू जान श्रद्धाभाव से उन चरण-दर्शन-ज्ञान को ।
अतिशीघ्र पाते मुक्ति योगी अरे जिनको जानकर ॥४०॥

हे भव्य ! तू दर्शन -ज्ञान -चारित्र इन तीनों को परमश्रद्धा से जान , जिसको जानकर योगी मुनि थोड़े ही काल में निर्वाण को प्राप्त करता है।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविशुद्धभावसंजुता।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूड़ामणी सिद्धा ॥५॥

ज्ञानजल में नहा निर्मल शुद्ध परिणति युक्त हो ।
त्रैलोक्यचूड़ामणि बने एवं शिवालय वास हो ॥४१॥

जो पुरुष इस जिनभाषित ज्ञानरूप जल को प्राप्त करके अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं, वे पुरुष तीन भुवन के चूड़ामणि और शिवालय अर्थात् मोक्षरूपी मन्दिर में रहनेवाले सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#40

णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहिं ।।42।।

ज्ञानगुण से हीन इच्छितलाभ को ना प्राप्त हों ।
यह जान जानो ज्ञान को गुणदोष को पहिचानने ।।४२।।

ज्ञानगुण से हीन पुरुष अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते, इसप्रकार जानकर हे भव्य ! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान को गुण दोष के जानने के लिए जान।

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ॥43॥

पर को न चाहें ज्ञानिजन चारित्र में आरूढ़ हो ।
अनूपम सुख शीघ्र पावें जान लो परमार्थ से ॥४३॥

जो पुरुष ज्ञानी है और चारित्र सहित है, वह अपनी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता है, परद्रव्य में राग-द्वेष मोह नहीं करता है। वह ज्ञानी जिसकी उपमा नहीं है, इसप्रकार अविनाशी मुक्ति के सुख को पाता है। हे भव्य ! तू निश्चय से इसप्रकार जान। यहाँ ज्ञानी होकर हेय उपादेय को जानकर, संयमी बनकर परद्रव्य को अपने में नहीं मिलाता है, वह परम सुख पाता है। ”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#42

“

एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयराएण।
सम्मत्तसंजमासयदुण्हं पि उद्देसियं चरणं ॥४४॥

इसतरह संक्षेप में सम्यक्चरण संयमचरण ।
का कथन कर जिनदेव ने उपकृत किये हैं भव्यजन ॥४४॥

एवं अर्थात् ऐसे पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप से श्री वीतरागदेव ने ज्ञान के द्वारा कहे सम्यक्त्व और संयम इन दोनों के आश्रय से चारित्र सम्यक्त्वचरणस्वरूप और संयमचरणस्वरूप दो प्रकार से उपदेश किया है, आचार्य ने चारित्र के कथन को संक्षेपरूप से कहकर संकोच किया है।

”

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#43

"

भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुणं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होई ॥45॥

स्फुट रचित यह चरित पाहुड़ पढ़ो पावन भाव से ।
तुम चतुर्गति को पारकर अपुनर्भव हो जाओगे ॥४५॥

यहाँ आचार्य कहते हैं कि हे भव्यजीवों ! यह चरण अर्थात् चारित्रपाहुड हमने स्फुट प्रगट करने हेतु बनाया है, उसको तुम अपने शुद्धभाव से भाओ। अपने भावों में बारम्बार अभ्यास करो, इससे शीघ्र ही चार गतियों को छोड़कर अपुनर्भव मोक्ष तुम्हें होगा, फिर संसार में जन्म नहीं पाओगे।

"

चारित्र पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

चारित्र पाहुड जी

”

“

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

”

“

ॐ नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

बोध पाहुड जी

”

#1

बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे ।
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे ॥1॥
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं ।
वोच्छामि समासेण छक्कायसुहंकरं सुणहं ॥2॥

शास्त्रज्ञ हैं सम्यक्त्व संयम शुद्धतप संयुक्त हैं ।
कर नमन उन आचार्य को जो कषायों से रहित हैं ॥१॥
अर सकलजन संबोधने जिनदेव ने जिनमार्ग में ।
छहकाय सुखकर जो कहा वह मैं कहूँ संक्षेप में ॥२॥

आचार्य कुंदकुंद कहते हैं कि मैं आचार्यों को नमस्कार कर, छहकाय के जीवों को सुख के करनेवाले जिनमार्ग में जिनदेव ने जैसे कहा है वैसे, जिसमें समस्त लोक के हित का ही प्रयोजन है - ऐसा ग्रन्थ संक्षेप में कहूँगा, उसको हे भव्य जीवों ! तुम सुनो। जिन आचार्यों की वंदना की, वे आचार्य कैसे हैं ? बहुत शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले हैं, जिनका तपश्चरण सम्यक्त्व और संयम से शुद्ध है, कषायरूप मल से रहित हैं, इसीलिए शुद्ध हैं।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

आयदणं चेदिहरं, जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं ।
भणियं सुवीयरायं, जिणुमुद्दा णाणमादत्थं ॥3॥
अरहंतेण सुदिट्ठं, जं देवं तित्थमिह य अरहंतं ।
पावज्जगुणविसुद्धा, इय णायव्वा जहाकमसो ॥4॥

ये आयतन अर चैत्यगृह अर शुद्ध जिनप्रतिमा कही ।
दर्शन तथा जिनबिम्ब जिनमुद्रा विरागी ज्ञान ही ॥३॥
हैं देव तीरथ और अर्हन् गुणविशुद्धा प्रव्रज्या ।
अरिहंत ने जैसे कहे वैसे कहूँ मैं यथाक्रम ॥४॥

१-आयतन, २-चैत्यगृह, ३-जिनप्रतिमा, ४-दर्शन, ५-आगम में प्रतिपादित अत्यंत वीतराग जिनबिम्ब, ६-जिनमुद्रा ७-आत्मस्थज्ञान, ८-अरिहंत सर्वज्ञ वीतराग देवों द्वारा अच्छी प्रकार प्रतिपादित देव का स्वरुप और ९-तीर्थ १०-अरिहंतस्वरुप का निरूपण और ११-गुणों से युक्त विशुद्ध प्रव्रज्या (दीक्षा) क्रमशः (११अधिकार), इस (बोध प्राभृत) ग्रन्थ में जानो ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#3

मणवयणकायदव्वा आयत्ता जस्स इन्दिया विसया।
आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं ॥5॥

आधीन जिनके मन-वचन-तन इन्द्रियों के विषयसब ।
कहे हैं जिनमार्ग में वे संयमी ऋषि आयतन ॥5॥

जिनमार्ग में संयमसहित मुनिरूप है, उसे 'आयतन' कहा है। कैसा है मुनिरूप, जिसके मन-वचन-काय द्रव्यरूप हैं वे तथा पाँच इन्द्रियों के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ये विषय हैं वे 'आयत्ता' अर्थात् अधीन हैं वशीभूत हैं। उनके (मन-वचन-काय और पाँच इन्द्रियों के विषय) संयमी मुनि आधीन नहीं हैं। वे मुनि के वशीभूत हैं ऐसा संयमी है वह 'आयतन' है ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

मयरायदोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंचमहव्वयधारी आयदणं महरिसी भणियं ॥6॥

हो गये हैं नष्ट जिनके मोह राग-द्वेष मद ।
जिनवर कहें वे महाव्रतधारी ऋषि ही आयतन ॥६॥

जिस मुनि के मद, राग, द्वेष, मोह, क्रोध, लोभ और चकार से माया आदि ये सब 'आयत्ता' अर्थात् निग्रह को प्राप्त हो गये और पाँच महाव्रत जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह का त्याग, उनके धारी हो ऐसा महामुनि ऋषीश्वर 'आयतन' कहा है।

”

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।
सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं ॥7॥

जो शुक्लध्यानी और केवलज्ञान से संयुक्त हैं ।
अर जिन्हें आतम सिद्ध है वे मुनिवृषभ सिद्धायतन ॥७॥

विशुद्ध ध्यान सहित, केवल ज्ञान से युक्त जिस श्रेष्ठ मुनि के निजात्मस्वरूप सिद्ध हुआ है या जिन्होंने छह द्रव्यों, सात तत्वों, नव पदार्थों को अच्छी तरह जान लिया है उन्हे सिद्धायतन कहा है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च ।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं ॥४॥

जानते मैं ज्ञानमय परजीव भी चैतन्यमय ।
सद्ज्ञानमय वे महाव्रतधारी मुनी ही चैत्यगृह ॥८॥

जो मुनि 'बुद्ध' अर्थात् ज्ञानमयी आत्मा को जानता हो, अन्य जीवों को 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप जानता हो, आप ज्ञानमयी हो और पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो, निर्मल हो, उस मुनि को हे भव्य ! तू 'चैत्यगृह' जान।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

"

चेइयं बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।
चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं ॥१॥

मुक्ति-बंधन और सुख-दुःख जानते जो चैत्य वे ।
बस इसलिए षट्काय हितकर मुनी ही हैं चैत्यगृह ॥८॥

बंध मोक्ष दुख और सुख जिसको होते हैं वह जीव चैत्य है, चैत्यगृह जिनमार्ग में षटकाय के जीवों के लिये, हितकारी कहा है।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#8

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ।।10।।

सद्‌ज्ञानदर्शनचरण से निर्मल तथा निर्ग्रन्थ मुनि ।
की देह ही जिनमार्ग में प्रतिमा कही जिनदेव ने ।।१०।।

जिनमार्ग में -- स्व और पर से चलती हुई देह सहित, सम्यग्दर्शन-ज्ञान से शुद्ध आचरण (सम्यक्चारित्र) धारक निर्ग्रंथ, वीतरागी, ऐसी प्रतिमा (जिनबिंब) है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#9

"

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा ॥११॥

जो देखे जाने रमे निज में ज्ञानदर्शन चरण से ।
उन ऋषीगण की देह प्रतिमा वंदना के योग्य है ॥११॥

जो शुद्ध आचरण का आचरण करते हैं तथा सम्यग्ज्ञान से यथार्थ वस्तु को जानते हैं। और सम्यग्दर्शन से अपने स्वरूप को देखते हैं इस प्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है. ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है, वह वंदन करने योग्य है।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#10

दंसणअणंतणाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।
सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं ॥12॥
णिरुवममचलमखोहा णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धठ्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ॥13॥

अनंतदर्शनज्ञानसुख अर वीर्य से संयुक्त हैं ।
हैं सदासुखमय देहबिन कर्माष्टकों से युक्त हैं ॥१२॥
अनुपम अचल अक्षोभ हैं लोकाग्र में थिर सिद्ध हैं ।
जिनवर कथित व्युत्सर्ग प्रतिमा तो यही ध्रुव सिद्ध हैं ॥१३॥

अनन्त-दर्शन, अनन्त-ज्ञान, अनन्त-वीर्य, अनन्त-सुख, शाश्वत (अविनाशी) सुख-युक्त,अशरीरी और अष्टकर्मों के बंधन से मुक्त, उपमा रहित, अचल,क्षोभ-रहित,जंगम-रूप से निर्मित हैं, सिद्ध स्थान में स्थित ध्रुव, सिद्ध-परमेष्ठी को स्थावर-प्रतिमा कहते हैं।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं ।।।५।।

सम्यक्त्व संयम धर्ममय शिवमग बतावनहार जो ।
वे ज्ञानमय निर्ग्रन्थ ही दर्शन कहे जिनमार्ग में ।।१४।।

जो मोक्षमार्ग दिखलाता है अर्थात् सम्यक्दर्शन, ज्ञानमय, संयम, दस-लक्षण धर्म और परिग्रह रहित (चारित्र) जिनमार्ग में उसे दर्शन कहा। है

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

"

जह फुल्लं गंधमयं भवति हु खीरं स घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं ।।15।।

दूध घृतमय लोक में अरु पुष्प हैं ज्यों गंधमय ।
मुनिलिंगमय यह जैनदर्शन त्योंहि सम्यक् ज्ञानमय ।।१५।।

जैसे फूल गंधमयी है, दूध घृतमयी है वैसे ही दर्शन अर्थात् मत में सम्यक्त्व है। कैसा है दर्शन ? अंतरंग तो ज्ञानमयी है और बाह्य रूपस्थ है-मुनि का रूप है तथा उत्कृष्ट श्रावक, अर्जिका का रूप है।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#13

"

जिणबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देह दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा ।।16।।

जो कर्मक्षय के लिए दीक्षा और शिक्षा दे रहे ।
वे वीतरागी ज्ञानमय आचार्य ही जिनबिंब हैं ।।१६।।

जो ज्ञानमय,संयम से शुद्ध, परम वीतरागी हैं तथा दीक्षा-शिक्षा देते हैं, कर्म-क्षय में कारण हैं और शुद्ध हैं वे (आचार्य परमेष्ठी) जिनबिम्ब हैं।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#14

तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो ।।17।।

सद्ज्ञानदर्शन चेतनामय भावमय आचार्य को ।
अतिविनय वत्सलभाव से वंदन करो पूजन करो ।।१७।।

उनको (आचार्य परमेष्ठी को), सब प्रकार से प्रणाम करो, सर्व प्रकार से पूजा करो, और उनके प्रति विनय तथा वात्सल्य-भाव रखो, जिनके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान है तथा निश्चित रूप से चेतना भाव अर्थात आत्म-स्वरूप की उपलब्धि विद्यमान है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
अरहन्तमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य ॥१८॥

व्रततप गुणों से शुद्ध सम्यक्भाव से पहिचानते ।
दें दीक्षा शिक्षा यही मुद्रा कही है अरिहंत की ॥१८॥

जो तप, व्रत और गुण अर्थात् उत्तरगुणों से शुद्ध हों, सम्यग्ज्ञान से पदार्थों को यथार्थ जानते हों, सम्यग्दर्शन से पदार्थों को देखते हों, इसीलिए जिनके शुद्ध सम्यक्त्व है इसप्रकार जिनबिंब आचार्य है। यही दीक्षा शिक्षा की देनेवाली अरहंत की मुद्रा है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

दढसंजममुद्दाए इन्दियमुद्दा कसायदिढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्रा एरिसा भणिया ।।।१।।

निज आतमा के अनुभवी इन्द्रियजयी दृढ़ संयमी ।
जीती कषायें जिन्होंने वे मुनी जिनमुद्रा कही ।।१३।।

संयम की दृढ़ मुद्रा, इन्द्रियों का संकोच, कषायों पर दृढ़ नियंत्रण, सम्यग्ज्ञान की मुद्रा, ऐसी जिनमुद्रा कही गई है ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं ॥20॥

संयमसहित निजध्यानमय शिवमार्ग ही प्राप्तव्य है।
सद्ज्ञान से हो प्राप्त इससे ज्ञान ही ज्ञातव्य है ॥२०॥

संयम सहित और उत्तम-ध्यान के योग्य, मोक्षमार्ग का लक्ष्य (आत्म-स्वभाव की प्राप्ति) ज्ञान से ही प्राप्त होता है इसलिए ज्ञान को जानना चाहिए।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जह णवि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।
तह णवि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स ॥21॥

हैं असंभव लक्ष्य बिंधना बाणबिन अभ्यासबिन ।
मुक्तिमग पाना असंभव ज्ञानबिन अभ्यासबिन ॥२१॥

जैसे वेधक बाण विहीन और धनुष के अभ्यास से रहित लक्ष्य को नहीं प्राप्त करता उसी प्रकार ज्ञान से रहित (अज्ञानी) मोक्षमार्ग के लक्ष्य (आत्म-स्वभाव) को नहीं प्राप्त करता है ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#19

णाणं पुरिस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्ते
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स ॥22॥

मुक्तिमग का लक्ष्य तो बस ज्ञान से ही प्राप्त हो ।
इसलिए सविनय करें जन-जन ज्ञान की आराधना ॥२२॥

ज्ञान पुरुष के होता है और पुरुष विनयसंयुक्त हो तो ज्ञान को प्राप्त करता है, जब ज्ञान को प्राप्त करता है तब उस ज्ञान द्वारा ही मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो 'परमात्मा का स्वरूप' उसको लक्षता देखता ध्यान करता हुआ उस लक्ष्य को प्राप्त करता है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं
परमत्थबद्धलक्खो णवि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स ॥23॥

मति धनुष श्रुतज्ञान डोरी रत्नत्रय के बाण हों ।
परमार्थ का हो लक्ष्य तो मुनि मुक्तिमग नहीं चूकते ॥२३॥

जिस मुनि के मतिज्ञानरूप धनुष स्थिर हो, श्रुतज्ञानरूप गुण अर्थात् प्रत्यंचा हो, रत्नत्रयरूप उत्तम बाण हो और परमार्थस्वरूप निजशुद्धात्मस्वरूप का संबंधरूप लक्ष्य हो, वह मुनि मोक्षमार्ग को नहीं चूकता है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#21

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामांशुदेइ णाणं च।
सो दइ जस्स अत्थि हु अत्थो धम्मो य पवज्जा ॥25॥

धर्मार्थ कामरु ज्ञान देवे देव जन उसको कहें ।
जो हो वही दे नीति यह धर्मार्थ कारण प्रव्रज्या ॥२४॥

वह देव है, जो भली प्रकार अर्थ, धर्म, काम और ज्ञान देते हैं । जिसके पास है वही देता है इस न्याय से जिनके पास अर्थ, धर्म, काम और दीक्षा / ज्ञान है उनको 'देव' जानो।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

“

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं ॥25॥

सब संग का परित्याग दीक्षा दयामय सद्धर्म हो ।
अर भव्यजन के उदय कारक मोह विरहित देव हों ॥२५॥

जो दया से विशुद्ध है वह धर्म है, जो सर्व परिग्रह से रहित है वह प्रव्रज्या है, जिसका मोह नष्ट हो गया है वह देव है, वह भव्य जीवों के उदय को करने वाला है।

”

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#23

“

वयसम्मत्तविसुद्धे पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे।
ण्हाएउ मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण ॥26॥

सम्यक्त्वव्रत से शुद्ध संवर सहित अर इन्द्रियजयी ।
निरपेक्ष आतमतीर्थ में स्नान कर परिशुद्ध हों ॥२६॥

व्रत सम्यक्त्व से विशुद्ध और पाँच इन्द्रियों से संयत अर्थात् संवरसहित तथा निरपेक्ष अर्थात् ख्याति, लाभ, पूजादिक इस लोक के फल की तथा परलोक में स्वर्गादिक के भोगों की अपेक्षा से रहित ऐसे आत्मस्वरूप तीर्थ में दीक्षा शिक्षारूप स्नान से पवित्र होओ।

”

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#24

जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि सतिभावेण ।।27।।

यदि शान्त हों परिणाम निर्मलभाव हों जिनमार्ग में ।
तो जान लो सम्यक्त्व संयम ज्ञान तप ही तीर्थ है ।।२७।।

जिनमार्ग में वह तीर्थ है जो निर्मल उत्तम-क्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थ-श्रद्धान-लक्षण शंकादि मल-रहित निर्मल सम्यक्त्व तथा इन्द्रिय व प्राणी संयम तथा बारह प्रकार के निर्मल तप और जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान, ये 'तीर्थ' हैं, ये भी यदि शांत-भाव सहित होता है तो ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#25

णामे ठवणे हि संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमो भावा भावंति अरहंतं ॥24॥

नाम थापन द्रव्य भावों और गुणपर्यायों से ।
च्यवन आगति संपदा से जानिये अरिहंत को ॥२८॥

नाम, स्थापना, और द्रव्य, भाव से, गुण पर्यायों से तथा गमन (स्वर्ग/नरक से च्युत होकर) और आगमन (भरतादि क्षेत्र में) व सम्पदा (रत्न-वर्षा आदि) से भव्य जीव अरहंत भगवान का चिन्तन करते हैं ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#26

"

दंसण अणंत णाणे मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवमगुणमारूढो अरहंतो एरिसो होइ ॥29॥

अनंत दर्शन ज्ञानयुत आरूढ़ अनुपम गुणों में ।
कर्माष्टि बंधन मुक्त जो वे ही अरे अरिहंत हैं ॥२९॥

अनन्त-दर्शन, अनन्त-ज्ञान से अष्ट-कर्मो का बंध नष्ट होने होने से, भाव-मोक्ष प्राप्त,अनुपम गुणों से सहित ऐसे अरिहंत होते हैं ।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#27

जरवाहिजम्ममरणं चउगइगमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो ॥30॥

जन्ममरणजरा चतुर्गतिगमन पापरु पुण्य सब ।
दोषोत्पादक कर्म नाशक ज्ञानमय अरिहंत हैं ॥३०॥

जरा - बुढ़ापा,व्याधि-रोग, जन्म-मरण, चारों गतियों में गमन, पुण्य-पाप और दोषों को उत्पन्न करनेवाले कर्मों का नाश करके, केवलज्ञानमयी अरहंत हुआ हो वह 'अरहंत' हैं।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#28

“

गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स ॥3१॥

गुणथान मार्गणथान जीवस्थान अर पर्याप्ति से ।
और प्राणों से करो अरहंत की स्थापना ॥३१॥

गुणस्थान, मार्गणास्थान, पर्याप्ति, प्राण और जीवस्थान इन पाँच प्रकार से अरहंत पुरुष की स्थापना प्राप्त करना अथवा उसको प्रणाम करना चाहिए।

”

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा ॥32॥

आठ प्रातिहार्य अरु चौंतीस अतिशय युक्त हों ।
सयोगकेवलि तेरवें गुणस्थान में अरहंत हों ॥३२॥

गुणस्थान चौदह कहे हैं, उसमें सयोगकेवली नाम तेरहवाँ गुणस्थान है। उसमें योगों की प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानसहित सयोगकेवली अरहंत होता है। उनके चौंतीस अतिशय और आठ प्रतिहार्य होते हैं, ऐसे तो गुणस्थान द्वारा 'स्थापना अरहंत' कहलाते हैं।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#30

गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥33॥

गति इन्द्रिय कायरु योग वेद कसाय ज्ञानरु संयमा ।
दर्शलेश्या भव्य सम्यक् संज्ञिना आहार हैं ॥३३॥

१४ मार्गणा -- गति, पंचेन्द्रियों, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व, और आहारक, इसप्रकार मार्गणा अपेक्षा अरिहंत भगवान् की स्थापना करनी चाहिए ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#31

"

आहारो य सरीरो इंदियमणआणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरहो ॥34॥

आहार तन मन इन्द्रि श्वासोच्छ्वास भाषा छहों इन ।
पर्याप्तियों से सहित उत्तम देव ही अरहंत हैं ॥३४॥

आहार, शरीर, इन्द्रिय, मन, आनप्राण अर्थात् श्वासोच्छ्वास और भाषा इसप्रकार छह पर्याप्त हैं, इस पर्याप्ति गुण द्वारा समृद्ध अर्थात् युक्त उत्तम देव अरहंत हैं।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#32

"

पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा ॥35॥

पंचेन्द्रियों मन-वचन-तन बल और श्वासोच्छ्वास भी ।
अर आयु-इन दश प्राणों में अरिहंत की स्थापना ॥३५॥

पाँच इन्द्रिय-प्राण, मन-वचन-काय तीन बल-प्राण, एक श्वासोच्छ्वास-प्राण और एक आयु-प्राण ये दस प्राण होते हैं ।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#33

मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो ॥36॥

सैंनी पंचेन्द्रियों नाम के इस चतुर्दश जीवस्थान में ।
अरहंत होते हैं सदा गुणसहित मानवलोक में ॥३६॥

मनुष्यभव में पंचेन्द्रिय नाम के चौदहवें जीवस्थान अर्थात् जीवसमास उसमें इतने गुणों के समूह से युक्त तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त अरहंत होते हैं।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#34

जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं।
सिंहाण खेले सेओ णत्थि दुगुंछा य दोसो य ॥37॥
दस पाणा पज्जती अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया।
गोखीरसंखधवलं मंसं रुहिरं च सव्वंगे ॥38॥
एरिसगुणेहिं सव्वं अइसयवंतं सुपरिमलामोयं।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स ॥39॥

व्याधी बुढ़ापा श्वेद मल आहार अर नीहार से।
थूक से दुर्गन्ध से मल-मूत्र से वे रहित हैं ॥ ३७ ॥
अठ सहस लक्षण सहित हैं अर रक्त है गोक्षीर सम ।
दश प्राण पर्याप्ती सहित सर्वांग सुन्दर देह है ॥ ३८ ॥
इस तरह अतिशयवान निर्मल गुणों से सयुक्त हैं।
अर परम औदारिक श्री अरिहंत की नरदेह है ॥ ३९ ॥

अरहंत पुरुष के औदारिक काय इसप्रकार होता है, जो बुढापा, व्याधि और रोग संबंधी दुःख से रहित है, आहार, मल-मूत्र विसर्जन से रहित है, मलमूत्र रहित है; श्लेष्म, थूक-कफ, पसेव और दुर्गन्ध अर्थात् जुगुप्सा, ग्लानि और दुर्गन्धादि दोष उसमें नहीं है ॥३७॥ दस तो उसमें प्राण होते हैं वे द्रव्यप्राण हैं, पूर्ण पर्याप्ति है, एक हजार आठ लक्षण कहे हैं और सर्वांग में गाय के दूध तथा शंख जैसा धवल रुधिर और मांस है ॥३८॥ इसप्रकार गुणों से संयुक्त सर्व ही देह अतिशयसहित उत्तम सुगन्ध से परिपूर्ण है, आमोद अर्थात् सुगंध जिसमें इसप्रकार अरहंत पुरुष औदारिक देह के जानो ॥३९॥

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#35

मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविशुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो ॥५०॥
सम्मद्दंसणि पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जया।
सम्मत्तगुणविशुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो ॥५१॥

राग-द्वेष विकार वर्जित विकल्पों से पार हैं ।
कषायमल से रहित केवलज्ञान से परिपूर्ण हैं ॥४०॥
सद्दृष्टि से सम्पन्न अर सब द्रव्य-गुण-पर्याय को ।
जो देखते अर जानते जिननाथ वे अरिहंत हैं ॥४१॥

अरिहन्त भगवान भाव निक्षेप की अपेक्षा -- मद, राग, दोष रहित, कषाय, नोकषाय रहित, अत्यंतविशुद्ध, मन के व्यापार रहित और केवल ज्ञानादि भावों से युक्त जानने चाहिए ।

सम्यग्दर्शन से तो अपने को तथा सबको सत्तामात्र देखते हैं, इसप्रकार जिनको केवलदर्शन है,ज्ञान से सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं, जिनको सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व पाया जाता है, इसप्रकार अरहंत को भाव-निक्षेप से जानना चाहिए ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#36

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जणे तह मसाणवासे वा
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा ।।५२।।
सवसासत्तं तित्थं वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं
जिणभवणं अह बेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति ।।५३।।
पंचमहव्वयजुत्त पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा
सज्झायझाणजुत्त मुणिवरवसहा णिइच्छन्ति ।।५५।।

शून्यघर तरुमूल वन उद्यान और मसान में ।
वसतिका में रहें या गिरिशिखर पर गिरिगुफा में ।।४२।।
चैत्य आलय तीर्थ वच स्ववशासक्तस्थान में ।
जिनभवन में मुनिवर रहें जिनवर कहें जिनमार्ग में ।।४३।।
इन्द्रियजयी महाव्रतधनी निरपेक्ष सारे लोक से ।
निजध्यानरत स्वाध्यायरत मुनिश्रेष्ठ ना इच्छा करें ।।४४।।

सूना घर, वृक्ष का मूल, कोटर, उद्यान, वन तथा श्मशानभूमि, पर्वत की गुफा, पर्वत का शिखर, या भयानक वन अथवा वस्तिका - इनमें दीक्षासहित मुनि ठहरें ।

स्ववशासक्त अर्थात् स्वाधीन मुनियों से आसक्त जो क्षेत्र उन क्षेत्रों में मुनि ठहरे । जहाँ से मोक्ष पधारे इसप्रकार तो तीर्थस्थान और वच (आयतन आदिक परमार्थरूप संयमी मुनि, अरहंत, सिद्धस्वरूप उनके नाम के अक्षररूप 'मंत्र' तथा उनकी आज्ञारूप वाणी), चैत्य (उनके आकार धातु-पाषाण की प्रतिमा स्थापन), आलय (प्रतिमा तथा अक्षर मंत्र वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं, इसप्रकार आलय-मंदिर) कहा गया है अर्थात् तथा को 'चैत्य' कहते हैं और वह यंत्र या पुस्तक रूप ऐसा वच, चैत्य तथा आलय का त्रिक है अथवा जिनभवन अर्थात् अकृत्रिम चैत्यालय मंदिर इस प्रकार आयतनादिक उनके समान ही उनका व्यवहार उसे जिनमार्ग में जिनवर देव दीक्षासहित मुनियों के ध्यान करने योग्य, चिन्तवन करने योग्य जानते हैं। श्रेष्ठ मुनिराज पाँच महाव्रत संयुक्त हैं, पाँच इन्द्रियों को भले प्रकार जीतने वाले हैं, निरपेक्ष हैं, किसी प्रकार की वांछा से मुनि नहीं हुए हैं, स्वाध्याय और ध्यानयुक्त हैं

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#37

गिहगंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकषाया।
पावारंभविमुक्का पव्वज्ज एरिसा भणिया ॥४५॥

परिषहजयी जितकषायी निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं ।
हैं मुक्त पापारंभ से ऐसी प्रव्रज्या जिन कही ॥४६॥

गृह (घर) और ग्रंथ (परिग्रह) इन दोनों से मुनि तो मोह ममत्व, इष्ट-अनिष्ट बुद्धि से रहित ही हैं, जिनमें बाईस परीषहों का सहना होता है, कषायों को जीतते हैं और पापरूप आरंभ से रहित हैं, इसप्रकार प्रव्रज्या जिनेश्वरदेव ने कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#38

धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं।
कुद्दाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥46॥

धन-धान्य पट अर रजत-सोना आसनादिक वस्तु के ।
भूमि चंवर-छत्रादि दानों से रहित हो प्रव्रज्या ॥४६॥

धन, धान्य, वस्त्र इनका दान, हिरण्य अर्थात् रूपा, सोना आदिक, शय्या, आसन आदि शब्द से छत्र, चामरादिक और क्षेत्र आदि कुदानों से रहित प्रव्रज्या कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#39

सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंदा अलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥47॥

जिनवर कही है प्रव्रज्या समभाव लाभालाभ में ।
अर कांच-कंचन मित्र-अरि निन्दा-प्रशंसा भाव में ॥४७॥

जिसमें शत्रु-मित्र में समभाव है, प्रशंसा-निन्दा में, लाभ-अलाभ में और तृण-कंचन में समभाव है। इसप्रकार प्रव्रज्या कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#40

"

उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥48॥

प्रव्रज्या जिनवर कही सम्पन्न हों असंपन्न हों ।
उत्तम मध्यम घरों में आहार लें समभाव से ॥४८॥

उत्तम गेह अर्थात् शोभा सहित राजभवनादि और मध्यमगेह अर्थात् जिसमें अपेक्षा नहीं है। शोभारहित सामान्य लोगों का घर इनमें तथा दरिद्र-धनवान् इनमें निरपेक्ष अर्थात् इच्छारहित हैं, सब ही योग्य जगह पर आहार ग्रहण किया जाता है। इसप्रकार प्रव्रज्या कही है।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#41

णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५१॥

निर्ग्रन्थ है निःसंग है निर्मान है नीराग है ।
निर्दोष है निरआश है जिन प्रव्रज्या ऐसी कही ॥४९॥

निर्ग्रंथ / परिग्रह से रहित, निस्संग / स्त्री आदि के संसर्ग रहित, तृष्णा से रहित / आठ मदों से रहित, रागरहित, निर्दोषा / निर्द्वेशा, ममत्व रहित भाव, अहंकार रहित इसप्रकार दीक्षा कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#42

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥50॥

निर्लोभ हैं निर्मोह हैं निष्कलुष हैं निर्विकार हैं ।
निस्नेह निर्मल निराशा जिन प्रव्रज्या ऐसी कही ॥५०॥

निस्नेही, निर्लोभी, निर्मोही, निर्विकार, निकलुष,भय, आशाभाव रहित और निराश भाव सहित, इसप्रकार जिन दीक्षा कही गई है ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#43

जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्ज एरिसा भणिया ।।51।।

शान्त हैं हैं निरायुध नग्नत्व अवलम्बित भुजा ।
आवास परकृत निलय में जिन प्रव्रज्या ऐसी कही ।।५१।।

तत्काल जन्मे बालक के नग्नरूप सदृश्य, भुजायें (हाथ) जिसरूप मे नीचे को लटकी रहती हैं (कायोत्सर्ग में), तथा निरायुध /शस्त्रों से रहित या शांत हैं, अन्यों द्वारा निर्मित उपाश्रय में निवास करते हैं, इसप्रकार दीक्षा का स्वरुप बताया है ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#44

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंकारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥52॥

उपशम क्षमा दम युक्त है शृंगारवर्जित रूक्ष है ।
मदरागरुस से रहित है जिनप्रव्रज्या ऐसी कही ॥५२॥

उपशम / मोहकर्म के उदय का अभावरूप शांतपरिणाम, कषायों के शमन और इन्द्रिय और मन के दमन युक्त, शरीर के संस्कार रहित रुक्ष अर्थात् तेल आदि का मर्दन शरीर के नहीं है, मद और राग द्वेष से रहित जिनदीक्षा इसप्रकार कही है ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#45

विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।
सम्मत्तगुणविसुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥53॥

मूढ़ता विपरीतता मिथ्यापने से रहित है ।
सम्यक्त्व गुण से शुद्ध है जिन प्रव्रज्या ऐसी कही ॥५३॥

विपरीतता-रूप, मूढ भाव,अष्टकर्म, और मिथ्यात्व नष्ट होकर सम्यक्त्व गुणों से विशुद्ध जिनदीक्षा इस प्रकार कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#46

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।
भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया ॥54॥

जिनमार्ग में यह प्रव्रज्या निर्ग्रन्थता से युक्त है ।
भव्य भावे भावना यह कर्मक्षय कारण कही ॥५४॥

जिन मार्ग में दीक्षा, छहों संहनन में कही है,
निर्ग्रंथ अपरिग्रहीयों के भव्य पुरुष ही इसकी
भावना करते हैं, कर्म क्षय में कारण कही है ।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#47

तिलतुसमत्तणिमित्तसम बाहिरग्गंथसंगहो णत्थि।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं ॥55॥

जिसमें परिग्रह नहीं अन्तर्बाह्य तिलतुषमात्र भी ।
सर्वज्ञ के जिनमार्ग में जिनप्रव्रज्या ऐसी कही ॥५५॥

तिल-तुष मात्र सत्व का कारण इसप्रकार भावरूप इच्छा अर्थात् अंतरंग परिग्रह और तिल-तुष बराबर भी बाह्य परिग्रह का संग्रह मुनि के नहीं है, वही दीक्षा है जैसी सर्वदर्शी /सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान ने कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#48

"

उवसग्गपरिस्सिहस्सहा णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थइ।
सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ ।।56।।

परिषह सहें उपसर्ग जीतें रहें निर्जन देश में ।
शिला पर या भूमितल पर रहें वे सर्वत्र ही ।।५६।।

उपसर्ग अथवा देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत उपद्रव और परीषह अर्थात् दैव-कर्मयोग से आये हुए बाईस परीषहों को समभावों से सहना इसप्रकार प्रव्रज्यासहित मुनि हैं, वे जहाँ अन्यजन नहीं रहते ऐसे निर्जन वनादि प्रदेशों में सदा रहते हैं, वहाँ भी शिलातल, काष्ठ, भूमितल में रहते हैं, इन सब ही प्रदेशों में बैठते हैं, सोते हैं, 'सर्वत्र' कहने से वन में रहें और किंचित्काल नगर में रहें तो ऐसे ही स्थान पर रहें।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#49

पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥57॥

पशु-नपुंसक-महिला तथा कुस्शीलजन की संगति ।
ना करें विकथा ना करें रत रहें अध्ययन-ध्यान में ॥५७॥

जिस प्रव्रज्या में पशु-तिर्यंच, महिला (स्त्री), षंढ (नपुंसक) इनका संग तथा कुशील (व्यभिचारी) पुरुष का संग नहीं करते हैं; स्त्री कथा, राज कथा, भोजन कथा और चोर इत्यादि की कथा जो विकथा है, उनको नहीं करते हैं तो क्या करते हैं ? स्वाध्याय अर्थात् शास्त्र जिनवचनों का पठन-पाठन और ध्यान अर्थात् धर्म-शुक्ल ध्यान इनसे युक्त रहते हैं। इसप्रकार प्रव्रज्या जिनदेव ने कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#50

तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥58॥

सम्यक्त्व संयम तथा व्रत-तप गुणों से सुविशुद्ध हो ।
शुद्ध हो सद्गुणों से जिन प्रव्रज्या ऐसी कही ॥५८॥

अन्तरंग और बहिरंग तप, महाव्रत और उत्तर-गुणों से शुद्ध (निरतिचार), इन्द्रिय और प्राणी संयम, सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध (निर्दोष सम्यग्दर्शन) और निर्दोष मूलगुणों से शुद्ध जिनदीक्षा इस प्रकार कही है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#51

“

एवं आयत्तणगुणपज्जंता बहुविसुद्धसम्मत्ते।
णिग्गंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं ॥51॥

आयतन से प्रव्रज्या तक यह कथन संक्षेप में ।
सुविशुद्ध समकित सहित दीक्षा यों कही जिनमार्ग में ॥६१॥

इस प्रकार पूर्वोक्त, निर्ग्रंथ दीक्षा जिनमार्ग में संक्षेप मे, अत्यंत विशुद्ध सम्यक्त्व युक्त आत्मगुणों की भावना से परिपूर्ण, यथा-ख्यात है।

”

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#52

रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गो जिणवरेहिं जह भणियं।
भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं ॥60॥

षट्काय हितकर जिसतरह ये कहे हैं जिनदेव ने ।
बस उसतरह ही कहे हमने भव्यजन संबोधने ॥६०॥

जिसमें अंतरंग भावरूप अर्थ शुद्ध है और ऐसा ही रूपस्थ अर्थात् बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है, वैसा छहकाय के जीवों का हित करनेवाला मार्ग भव्यजीवों के संबोधने के लिए कहा है।

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#53

"

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥61॥

जिनवरकथित शब्दत्वपरिणत समागत जो अर्थ है ।
बस उसे ही प्रस्तुत किया भद्रबाहु के इस शिष्य ने ॥६१॥

शब्द के विकार से उत्पन्न हुए भाषासूत्रों के द्वारा जैसा जिनदेव ने कहा, वैसा कहता हूँ जैसा भद्रबाहु के शिष्य से जाना है।

"

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#54

“

बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयउ ॥62॥

अंग बारह पूर्व चउदश के विपुल विस्तार विद ।
श्री भद्रबाहु गमकगुरु जयवंत हो इस जगत में ॥६२॥

भद्रबाहु आचार्य जिनको बारह अंगों का विशेष ज्ञान है, जिनको चौदह पूर्वों का विपुल विस्तार है, इसीलिए श्रुतज्ञानी हैं, 'गमक गुरु' हैं, भगवान हैं, वे जयवंत होवें।

”

बोध पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव
विरचित

बोध पाहुड जी

”

“

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

”

ॐ नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

भाव पाहुड जी

#1

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा ॥1॥

सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र वंदित सिद्ध जिनवरदेव अर।
सब संयतों को नमन कर इस भावपाहुड़ को कहूँ ॥१॥

मनुष्य, देव, पातालवासी देव - इनके इन्द्रों के द्वारा वंदने योग्य अरिहंत सिद्ध शेष संयतों को मस्तक से नमस्कार करके भाव-पाहुड को कहूँगा ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा वेन्ति ॥2॥

बस भाव ही गुण-दोष के कारण कहे जिनदेव ने।
भावलिंग ही परधान हैं द्रव्यलिंग न परमार्थ है ॥२॥

भाव प्रथम लिंग है, द्रव्य-लिंग नहीं , ऐसा निश्चय से जान, क्योंकि गुण और दोषों का कारणभूत भाव ही है इसप्रकार जिन भगवान कहते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#3

भावविसुद्धिणिमित्तं, बहिरंगस्स कीरए चाओ
बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स ॥3॥

अर भावशुद्धि के लिए बस परीग्रह का त्याग हो।
रागादि अन्तर में रहें तो विफल समझो त्याग सब ॥३॥

बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है, परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह रागादिक हैं, उनसे युक्त के बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#4

“

भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो ॥५॥

वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें ॥४॥

यदि कई जन्मान्तरों तक कोडाकोडि संख्या काल तक हाथ लम्बे लटकाकर, वस्त्रादिक का त्याग करके तपश्चरण करे तो भी भावरहित को सिद्धि नहीं होती है।

”

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

परिणामम्मि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहिरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ ॥5॥

परिणामशुद्धि के बिना यदि परीग्रह सब छोड़ दें।
तब भी अरे निज आत्महित का लाभ कुछ होगा नहीं ॥5॥

यदि मुनि बनकर परिणाम अशुद्ध होते हुए बाह्य परिग्रह को छोड़े तो बाह्य परिग्रह का त्याग उस भावरहित मुनि को क्या करे? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।
पंथिय सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण ॥6॥

प्रथम जानो भाव को तु भाव बिन द्रवलिंग से।
तो लाभ कुछ होता नहीं पथ प्राप्त हो पुरुषार्थ से ॥६॥

हे शिवपुरी के पथिक! प्रथम भाव को जान, भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है? शिवपुरी का पंथ जिनभगवंतों ने प्रयत्नसाध्य कहा है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारें।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं ॥7॥

भाव बिन द्रवलिंग अगणित धरे काल अनादि से।
पर आजतक हे आत्मन्! सुख रंच भी पाया नहीं ॥७॥

हे सत्पुरुष! अनादिकाल से लगाकर इस अनन्त संसार में तूने भाव-रहित बाह्य में निर्ग्रन्थ रूप बहुत बार ग्रहण किये और छोड़े ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तो सि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव! ॥8॥

भीषण नरक तिर्यंच नर अर देवगति में भ्रमण कर।
पाये अनन्ते दुःख अब भावो जिनेश्वर भावना ॥८॥

हे जीव! तूने भीषण (भयंकर) नरकगति तथा तिर्यंचगति में और कुदेव कुमनुष्यगति में तीव्र दुःख पाये हैं, अतः अब तू जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना भा, इससे तेरे संसार का भ्रमण मिटेगा।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#१

सत्तसु णरयावासे दारुणभीमाइं असहणीयाइं।
भुताइं सुइरकालं दुःक्खाइं णिरंतरं अहियं ॥१॥

इन सात नरकों में सतत चिरकाल तक हे आत्मन्।
दारुण भयंकर अरु असह्य महान दुःख तूने सहे ॥१॥

हे जीव! तूने सात नरकभूमियों के नरक आवास बिलों में दारुण अर्थात् तीव्र तथा भयानक और असहनीय अर्थात् सहे न जावें इसप्रकार के दुःखों को बहुत दीर्घ काल तक निरन्तर ही भोगे और सहे।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#10

खणणुत्तावणवालण, वेयणविच्छेयणाणिरोहं च।
पत्तो सि भावरहिओ, तिरियगईए चिरं कालं ॥10॥

तिर्यंचगति में खनन उत्तापन जलन अर छेदना।
रोकना वध और बंधन आदि दुख तूने सहे ॥१०॥

हे जीव! तूने तिर्यंचगति में खनन, उत्तापन, ज्वलन, वेदन, व्युच्छेदन, निरोधन इत्यादि दुःख सम्यग्दर्शन आदि भावरहित होकर बहुत काल पर्यन्त प्राप्त किये।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#11

आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि।
दुक्खाइं मणुयजम्मे पत्तो सि अणंतयं कालं ।।11।।

मानसिक देहिक सहज एवं अचानक आ पड़े।
ये चतुर्विध दुख मनुजगति में आत्मन् तूने सहे ।।११।।

हे जीव! तूने मनुष्यगति में अनन्तकाल तक आगन्तुक अर्थात् अकस्मात् वज्रपातादिक का आ गिरना, मानसिक अर्थात् मन में ही होनेवाले विषयों की वांछा का होना और तदनुसार न मिलना, सहज अर्थात् माता, पितादि द्वारा सहज से ही उत्पन्न हुआ तथा रागद्वेषादिक से वस्तु के इष्ट अनिष्ट मानने से दुःख का होना, शारीरिक अर्थात् व्याधि, रोगादिक तथा परकृत छेदन, भेदन आदि से हुए दुःख - ये चार प्रकार के और चकार से इनको आदि लेकर अनेक प्रकार के दुःख पाये।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं।
संपत्तो सि महाजस दुःखं सुहभावणारहिओ ॥12॥

हे महायश सुरलोक में परसंपदा लखकर जला।
देवांगना के विरह में विरहाग्नि में जलता रहा ॥१२॥

हे महायश! तूने सुरनिलयेषु अर्थात् देवलोक में सुराप्सरा अर्थात् प्यारे देव तथा प्यारी अप्सरा के वियोगकाल में उसके वियोग संबंधी दुःख तथा इन्द्रादिक बड़े ऋद्धिधारियों को देखकर अपने को हीन मानने के मानसिक तीव्र दुःखों को शुभभावना से रहित होकर पाये हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#13

कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य।
भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ ॥13॥

पंचविध कांदर्पि आदि भावना भा अशुभतम।
मुनि द्रव्यलिंगीदेव हों किल्विषिक आदिक अशुभतम ॥१३॥

हे जीव! तू द्रव्यलिंगी मुनि होकर कान्दर्पी आदि पाँच अशुभ भावना भाकर प्रहीणदेव अर्थात् नीचदेव होकर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#14

पासत्थभावणाओ अणाइकालं अणेयवाराओ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणाभावबीएहिं ॥१५॥

पार्श्वस्थ आदि कुभावनायें भवदुःखों की बीज जो।
भाकर उन्हें दुख विविध पाये विविध बार अनादि से ॥१४॥

हे जीव! तू पार्श्वस्थ भावना से अनादिकाल से लेकर अनन्तबार भाकर दुःख को प्राप्त हुआ। किससे दुःख पाया? कुभावना अर्थात् खोटी भावना, उसका भाव वे ही हुए दुःख के बीज, उनसे दुःख पाया।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प बहुविहं दट्ठुं।
होऊण हीणदेवो पत्तो बहु माणसं दुक्खं ॥15॥

निज हीनता अर विभूति गुण-ऋद्धि महिमा अन्य की।
लख मानसिक संताप हो है यह अवस्था देव की ॥१६॥

हे जीव! तू हीन देव होकर अन्य महर्द्धिक देवों के गुण, विभूति और ऋद्धि रूप अनेक प्रकार का माहात्म्य देखकर बहुत मानसिक दुःख को प्राप्त हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो।
होऊण कुदेवत्तं पत्तो सि अणेयवाराओ ॥16॥

चतुर्विध विकथा कथा आसक्त अर मदमत्त हो।
यह आतमा बहुबार हीन कुदेवपन को प्राप्त हो ॥१६॥

हे जीव! तू चार प्रकार की विकथा में आसक्त होकर, मद से मत्त और जिसके अशुभ भावना का ही प्रकट प्रयोजन है, इसप्रकार होकर अनेकबार कुदेवपने को प्राप्त हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

असुईबीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गब्भवसहीहि।
वसिओ सि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर ॥17॥

फिर अशुचितम वीभत्स जननी गर्भ में चिरकाल तक।
दुख सहे तूने आजतक अज्ञानवश हे मुनिप्रवर ॥१७॥

हे मुनिप्रवर! तू कुदेवयोनि से चयकर अनेक माताओं की गर्भ की बस्ती में बहुत काल रहा। कैसी है वह बस्ती? अशुचि अर्थात् अपवित्र है, वीभत्स (घिनावनी) है और उसमें कलिमल बहुत है अर्थात् पापरूप मलिन मल की अधिकता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#18

पीओ सि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं
अण्णाण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहियरं ॥१८॥

अरे तू नरलोक में अगणित जनम धर-धर जिया।
हो उदधि जल से भी अधिक जो दूध जननी का पिया ॥१८॥

हे महायश! उस पूर्वोक्त गर्भवास में अन्य अन्य जन्म में, अन्य अन्य माता के स्तन का दूध तूने समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिक पिया है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#19

तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं।
रुण्णाण णयणणीरं सायरसलिलादु अहिययरं ॥१९॥

तेरे मरण से दुखित जननी नयन से जो जल बहा।
वह उदधिजल से भी अधिक यह वचन जिनवर ने कहा ॥१९॥

हे मुने! तूने माता के गर्भ में रहकर जन्म लेकर मरण किया, वह तेरे मरण से अन्य- अन्य जन्म में अन्य अन्य माता के रुदन के नयनों का नीर एकत्र करें तब समुद्र के जल से भी अतिशयकर अधिकगुणा हो जावे अर्थात् अनन्तगुणा हो जावे।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी।
पुञ्जइ जइ को वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी ॥20॥

ऐसे अनन्ते भव धरे नरदेह के नख-केश सब।
यदि करे कोई इकट्ठे तो ढेर होवे मेरु सम ॥२०॥

हे मुने! इस अनन्त संसार सागर में तूने जन्म लिये, उनमें केश, नख, नाल और अस्थि कटे, टूटे उनका यदि कोई देव पुंज करे तो मेरु पर्वत से भी अधिक राशि हो जावे, अनन्तगुणा हो जावे ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#21

जलथलसिहिपवणंबरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ।
वसिओ सि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो ॥21॥

परवश हुआ यह रह रहा चिरकाल से आकाश में।
थल अनल जल तरु अनिल उपवन गहन वन गिरि गुफा में ॥२१॥

हे जीव! तू जल में, थल अर्थात् भूमि में, शिखि अर्थात् अग्नि में, पवन में, अम्बर अर्थात् आकाश में, गिरि अर्थात् पर्वत में, सरित् अर्थात् नदी में, दरी अर्थात् पर्वत की गुफा में, तरु अर्थात् वृक्षों में, वनों में और अधिक क्या कहें सब ही स्थानों में, तीन लोक में अनात्मवश अर्थात् पराधीनवश होकर बहुत काल तक रहा अर्थात् निवास किया।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवित्तियाइं सव्वाइं।
पत्तो सि तो ण तित्तिं पुणरुत्तं ताइं भुञ्जंतो ॥22॥

पुद्गल सभी भक्षण किये उपलब्ध हैं जो लोक में।
बहु बार भक्षण किये पर तृप्ति मिली न रंच भी ॥२२॥

हे जीव! तूने इस लोक के उदर में वर्तते जो पुद्गल स्कन्ध, उन सबको ग्रसे अर्थात् भक्षण किये और उन ही को पुनरुक्त अर्थात् बारबार भोगता हुआ भी तृप्ति को प्राप्त न हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#23

तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाए पीडिएण तुमे।
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं ॥23॥

त्रैलोक्य में उपलब्ध जल सब तृषित हो तूने पिया।
पर प्यास फिर भी ना बुझी अब आत्मचिंतन में लगो ॥२३॥

हे जीव! तूने इस लोक में तृष्णा से पीड़ित होकर तीनलोक का समस्त जल पिया तो भी तृषा का व्युच्छेद न हुआ अर्थात् प्यास न बुझी, इसलिए तू इस संसार का मंथन अर्थात् तेरे संसार का नाश हो, इस प्रकार निश्चय रत्नत्रय का चिन्तन कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#24

गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं
ताणं णत्थि पमाणं अणंतभवसायरे धीर ॥24॥

जिस देह में तू रम रहा ऐसी अनन्ती देह तो।
मूरख अनेकों बार तूने प्राप्त करके छोड़ दीं ॥२४॥

हे मुनिवर! हे धीर! तूने इस अनन्त भवसागर में कलेवर अर्थात् शरीर अनेक ग्रहण किये और छोड़े, उनका परिमाण नहीं हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेणं।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ ॥25॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।
रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहिं विविहेहिं ॥26॥
इय तिरियमणुयजम्मे सुइरं उववज्जिऊण बहुवारं।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तो सि तं मित्त ॥27॥

शस्त्र श्वासनिरोध एवं रक्तक्षय संक्लेश से।
अर जहर से भय वेदना से आयुक्षय हो मरण हो ॥२५॥
अनिल जल से शीत से पर्वतपतन से वृक्ष से।
परधनहरण परगमन से कुमरण अनेक प्रकार हो ॥२६॥
हे मित्र! इस विधि नरगति में और गति तिर्यंच में।
बहुविध अनंते दुःख भोगे भयंकर अपमृत्यु के ॥२७॥

विषभक्षण से, वेदना की पीड़ा के निमित्त से, रक्त अर्थात् रुधिर के क्षय से, भय से, शस्त्र के घात से, संक्लेश परिणाम से, आहार तथा श्वास के निरोध से इन कारणों से आयु का क्षय होता है। हिम अर्थात् शीत पाले से, अग्नि से, जल से, बड़े पर्वत पर चढ़कर पड़ने से, बड़े वृक्ष पर चढ़कर गिरने से, शरीर का भंग होने से, रस अर्थात् पारा आदि की विद्या उसके संयोग से धारण करके भक्षण करे इससे, और अन्याय कार्य, चोरी, व्यभिचार आदि के निमित्त से - इसप्रकार अनेक-प्रकार के कारणों से आयु का व्युच्छेद (नाश) होकर कुमरण होता है। इसलिये कहते हैं कि हे मित्र! इसप्रकार तिर्यंच, मनुष्य जन्म में बहुतकाल बहुतबार उत्पन्न होकर अपमृत्यु अर्थात् कुमरण सम्बन्धी तीव्र महादुःख को प्राप्त हुआ ।

#26

छत्तीस तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।
अतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि निगोयवासम्मि ॥28॥

इस जीव ने नीगोद में अन्तरमुहूरत काल में।
छयासठ सहस अर तीन सौ छत्तीस भव धारण किये ॥२८॥

हे आत्मन्! तू निगोद के वास में एक अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार मरण को प्राप्त हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#27

वियलिंदए असीदी सट्ठ चालीसमेव जाणेह।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभावंतोमुहुत्तस्स ॥29॥

विकलत्रयों के असी एवं साठ अर चालीस भव।
चौबीस भव पंचेन्द्रियों अन्तरमुहूरत छुद्रभव ॥२९॥

इस अन्तर्मुहूर्त के भवों में दो इन्द्रिय के क्षुद्रभव अस्सी, तेइन्द्रिय के साठ, चौइन्द्रिय के चालीस और पंचेन्द्रिय के चौबीस, इसप्रकार हे आत्मन्! तू क्षुद्रभव जान ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओ सि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तय समायरह ॥30॥

रतन त्रय के बिना होता रहा है यह परिणमन।
तुम रतन त्रय धारण करो बस यही है जिनवर कथन ॥३०॥

हे जीव! तूने सम्यग्दर्शन - ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रय को नहीं पाया, इसलिए इस दीर्घकाल से - अनादि संसार में पहिले कहे अनुसार भ्रमण किया इस प्रकार जानकर अब तू उस रत्नत्रय का आचरण कर, इसप्रकार जिनेश्वरदेव ने कहा है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#29

"

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति ॥३१॥

निज आतमा को जानना सद्ज्ञान रमना चरण है।
निज आतमारत जीव सम्यग्दृष्टि जिनवर कथन है ॥३१॥

जो आत्मा आत्मा में रत होकर यथार्थरूप का अनुभव कर तद्रूप होकर श्रद्धान करे वह प्रगट सम्यग्दृष्टि होता है, उस आत्मा को जानना सम्यग्ज्ञान है, उस आत्मा में आचरण करके रागद्वेषरूप न परिणमना सम्यक्चारित्र है। इसप्रकार यह निश्चयरत्नत्रय है, मोक्षमार्ग है।

"

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओ सि।
भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव! ॥32॥

तूने अनन्ते जनम में कुमरण किये हे आत्मन्।
अब तो समाधिमरण की भा भावना भवनाशनी ॥३२॥

हे जीव! इस संसार में अनेक जन्मान्तरों में अन्य कुमरण मरण जैसे होते हैं, वैसे तू मरा। अब तू जिस मरण से जन्म-मरण का नाश हो जाय इसप्रकार सुमरण भा अर्थात् समाधिमरण की भावना कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#31

सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोपमाणिओ सव्वो ॥33॥

धरकर दिगम्बर वेष बारम्बार इस त्रैलोक में।
स्थान कोई शेष ना जन्मा-मरा ना हो जहाँ ॥३३॥

यह जीव द्रव्यलिंग का धारक मुनिपना होते हुए भी जो तीनलोक प्रमाण सर्वस्थान हैं, उनमें एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है कि जहाँ जन्म-मरण न किया हो ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं।
जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण ॥34॥

रे भावलिंग बिना जगत में अरे काल अनंत से।
हा! जन्म और जरा-मरण के दुःख भोगे जीव ने ॥३४॥

यह जीव इस संसार में जिसमें परम्परा भावलिंग न होने से अनंतकालपर्यन्त जन्म- जरा-मरण से पीड़ित दुःख को ही प्राप्त हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#33

पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं
गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीव ॥35॥

परिणाम पुद्गल आयु एवं समय काल प्रदेश में।
तनरूप पुद्गल ग्रहे-त्यागे जीव ने इस लोक में ॥३५॥

इस जीव ने इस अनन्त अपार भवसमुद्र में लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उन प्रति समय समय और पर्याय के आयुप्रमाण काल और अपने जैसा योगकषाय के परिणमनस्वरूप परिणाम और जैसा गतिजाति आदि नामकर्म के उदय से हुआ नाम और काल जैसा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी उनमें पुद्गल के परमाणुरूप स्कन्ध उनको बहुत बार; अनन्त बार ग्रहण किये और छोड़े।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#34

तेयाला तिण्णि सया रज्जूणं लोयखेत्तपरिमाणं।
मुत्तूणट्ठ पएसा जत्थ जण ढुरुढुल्लिओ जीवो ॥36॥

बिन आठ मध्यप्रदेश राजू तीन सौ चालीस त्रय।
परिमाण के इस लोक में जन्मा-मरा न हो जहाँ ॥३६॥

यह लोक तीन सौ तैंतालीस राजू परिमाण क्षेत्र हैं उनके बीच मेरु के नीचे गो स्तनाकार आठ प्रदेश हैं उनको छोड़कर अन्य प्रदेश ऐसा न रहा जिसमें यह जीव नहीं जन्मा मरा हो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#35

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया ॥37॥

एक-एक अंगुलि में जहाँ पर छयानवें हों व्याधियाँ।
तब पूर्ण तन में तुम बताओ होंगी कितनी व्याधियाँ ॥३७॥

इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवे छयानवे रोग होते हैं, तब कहो अवशेष समस्त शरीर में कितने रोग कहें ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#36

ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं ॥38॥

पूर्वभव में सहे परवश रोग विविध प्रकार के।
अर सहोगे बहु भाँति अब इससे अधिक हम क्या कहें?॥३८॥

हे महायश! हे मुने! तूने पूर्वोक्त सब रोगों को पूर्वभवों में तो परवश सहे, इस प्रकार ही फिर सहेगा, बहुत कहने से क्या?

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#37

पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले।
उयरे वसिओ सि चिरं णवदसमासेहिं पत्तेहिं ॥39॥

कृमिकलित मज्जा-मांस-मज्जित मलिन महिला उदर में।
नवमास तक कई बार आतम तू रहा है आजतक ॥३९॥

हे मुने! तूने इस प्रकार के मलिन अपवित्र उदर में नव मास तथा दस मास प्राप्त कर रहा। कैसा है उदर? जिसमें पित्त और आंतों से वेष्टित, मूत्र का स्रवण, फेफस अर्थात् जो रुधिर बिना मेद फूल जावे, कलिज्ज अर्थात् कलेजा, खून, खरिस अर्थात् अपक्व मल से मिला हुआ रुधिर श्लेष्म और कृमिजाल अर्थात् लट आदि जीवों के समूह ये सब पाये जाते हैं, इस प्रकार स्त्री के उदर में बहुत बार रहा ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते।
छद्दिखरिसाण मज्झे जढरे वसिओ सि जणणीए ।।40।।

तू रहा जननी उदर में जो जननि ने खाया-पिया।
उच्छिष्ट उस आहार को ही तू वहाँ खाता रहा ।।४०।।

हे जीव! तू जननी (माता) के उदर (गर्भ) में रहा, वहाँ माता के और पिता के भोग के अन्त छर्दि (वमन) का अन्न, खरिस (रुधिर से मिल हुआ अपक्व मल) के बीच में रहा, कैसा रहा? माता के दाँतों से चबाया हुआ और उन दाँतों के लगा हुआ (रुका हुआ) झूठा भोजन माता के खाने के पीछे जो उदर में गया उसके रसरूपी आहार से रहा।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#39

सिसुकाले य अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओ सि तुमं।
असुई असिया बहुसो मुणिवर बालत्तपत्तेण ॥५॥

शिशुकाल में अज्ञान से मल-मूत्र में सोता रहा।
अब अधिक क्या बोलें अरे मल-मूत्र ही खाता रहा ॥४१॥

हे मुनिवर! तू बचपन के समय में अज्ञान अवस्था में अशुचि (अपवित्र) स्थानों में अशुचि के बीच लेटा और बहुत बार अशुचि वस्तु ही खाई, बचपन को पाकर इस प्रकार चेष्टायें कीं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्ततसवत्तकुणिमदुग्गंधं
खरिसवसापूय खिब्भिस भरियं चिंतेहि देहउडं ॥42॥

यह देह तो बस हड्डियों श्रोणित बसा अर माँस का।
है पिण्ड इसमें तो सदा मल-मूत्र का आवास है ॥४२॥

हे मुने! तू देहरूप घट को इस प्रकार विचार, कैसा है देहघट? मांस, हाड, शुक्र (वीर्य), श्रोणित (रुधिर), पित्त (उष्ण विकार) और अंत्र (आंतड़िया) आदि द्वारा तत्काल मृतक की तरह दुर्गन्ध है तथा खरिस (रुधिर से मिला अपक्वमल), वसा (मेद), पूय (खराब खून) और राध इन सब मलिन वस्तुओं से पूरा भरा है, इस प्रकार देहरूप घट का विचार करो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#41

भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण।
इय भाविऊण उज्झसु गंथं अब्भंतरं धीर ॥43॥

परिवारमुक्ती मुक्ति ना मुक्ती वही जो भाव से।
यह जानकर हे आत्मन्! तू छोड़ अन्तरवासना ॥४३॥

जो मुनि भावों से मुक्त हुआ उसी को मुक्त कहते हैं और बांधव आदि कुटुम्ब तथा मित्र आदि से मुक्त हुआ उसको मुक्त नहीं कहते हैं, इसलिये हे धीर मुनि! तू इस प्रकार जानकर अभ्यन्तर की वासना को छोड़।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर! ।
अत्तावणेण जादो बाहुबली कित्तियं* कालं ॥४४॥

बाहुबली ने मान बस घरवार ही सब छोड़कर।
तप तपा बारह मास तक ना प्राप्ति केवलज्ञान की ॥४४॥

देखो, बाहुबली श्री ऋषभदेव का पुत्र देहादिक परिग्रह को छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनि बन गया तो भी मान कषाय से कलुष परिणाम रूप होकर कुछ समय तक आतापन योग धारणकर स्थित हो गया, फिर भी सिद्धि नहीं पाई।

#43

महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचत्तवावारो
सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय ॥45॥

तज भोजनादि प्रवृत्तियाँ मुनिपिंगला रे भावबिन।
अरे मात्र निदान से पाया नहीं श्रमणत्व को ॥४५॥

मधुपिंगल नाम का मुनि कैसा हुआ? देह आहारादि में व्यापार छोड़कर भी निदानमात्र से भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुआ उसको भव्यजीवों से नमने योग्य मुनि तू देख।

भाव पाहुड जी, आचार्य कुंदकुंद देव

#44

अण्णं च वसिट्ठमुणी पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो ॥46॥

इस ही तरह मुनि वशिष्ठ भी इस लोक में थानक नहीं।
रे एक मात्र निदान से घूमा नहीं हो वह जहाँ ॥४६॥

अन्य और एक वशिष्ठ नामक मुनि ने निदान के दोष से दुःख को प्राप्त हुआ इसलिए लोक में ऐसा वासस्थान नहीं है जिसमें यह जीव जन्ममरण सहित भ्रमण को प्राप्त नहीं हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#45

“

सो णत्थि तप्पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो जत्थ णं ढुरुढुल्लिओ जीव ॥47॥

चौरासिलख योनीविषें है नहीं कोई थल जहाँ।
रे भावबिन द्रवलिंगधर घूमा नहीं हो तू जहाँ ॥४७॥

इस संसार में चौरासी लाख योनि उनके निवास में ऐसा कोई प्रदेश नहीं है, जिसमें इस जीव ने द्रव्यलिंगी मुनि होकर भी भावरहित होता हुआ भ्रमण न किया हो।

”

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#46

भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण ॥48॥

भाव से ही लिंगी हो द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं।
लिंगभाव ही धारण करो द्रव्यलिंग से क्या कार्य हो ॥४८॥

लिंगी होता है सो भावलिंग ही से होता है, द्रव्यलिंग से लिंगी नहीं होता है, यह प्रकट है, इसलिए भावलिंग ही धारण करना, द्रव्यलिंग से क्या सिद्ध होता है?

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#47

दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरए ॥४९॥

जिनलिंग धरकर बाहुमुनि निज अंतरंग कषाय से।
दण्डकनगर को भस्मकर रौरव नरक में जा पड़े ॥४९॥

देखो, बाहु नामक मुनि बाह्य जिनलिंग सहित था तो भी अभ्यन्तर के दोष से समस्त दंडक नामक नगर को दग्ध किया और सप्तम पृथ्वी के रौरव नामक बिल में गिरा।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#48

अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणो त्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ ॥50॥

इस ही तरह द्रव्यलिंगी द्वीपायन मुनी भी भ्रष्ट हो।
दुर्गति गमनकर दुख सहे अर अनंत संसारी हुए ॥५०॥

आचार्य कहते हैं कि जैसे पहिले बाहु मुनि कहा वैसे ही और भी दीपायन नाम का द्रव्यश्रमण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र से भ्रष्ट होकर अनंतसंसारी हुआ है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढिओ विसुद्धमई।
णामेण सिवकुमारो परीत्तसंसारिओ जादो ॥51॥

शुद्धबुद्धी भावलिंगी अंगनाओं से घिरे।
होकर भी शिवकुमार मुनि संसारसागर तिर गये ॥५१॥

शिवकुमार नामक भावश्रमण स्त्रीजनों से वेष्टित हुए भी विशुद्ध बुद्धि का धारक धीर संसार को त्यागने वाला हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#50

केवलिजिणपण्णत्तं एयादसअंग सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥52॥

अभविसेन ने केवलि प्ररूपित अंग ग्यारह भी पढ़े।
पर भावलिंग बिना अरे संसारसागर न तिरे ॥६२॥

अभव्यसेन नाम के द्रव्यलिंगी मुनि ने केवली भगवान से उपदिष्ट ग्यारह अंग पढ़े और ग्यारह अंग को 'पूर्ण श्रुतज्ञान' भी कहते हैं, क्योंकि इतने पढ़े हुए को अर्थ अपेक्षा 'पूर्ण श्रुतज्ञान' भी हो जाता है। अभव्यसेन इतना पढ़ा तो भी भावश्रमणपने को प्राप्त न हुआ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#51

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेव य सिवभूई केवलीणाणी फुडं जाओ ॥53॥

कहाँ तक बतावें अरे महिमा तुम्हें भावविशुद्धि की।
तुषमास पद को घोखते शिवभूति केवलि हो गये ॥५३॥

आचार्य कहते हैं कि शिवभूति मुनि ने शास्त्र नहीं पढ़े थे, परन्तु तुषमाष ऐसे शब्द को रटते हुए भावों की विशुद्धता से महानुभाव होकर केवलज्ञान पाया, यह प्रकट है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#52

भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीण णियरं णासइ भावेण दव्वेण ॥54॥

भाव से हो नग्न तन से नग्नता किस काम की।
भाव एवं द्रव्य से हो नाश कर्मकलंक का ॥५४॥

भाव से नग्न होता है, बाह्य नग्नलिंग से क्या कार्य होता है? अर्थात् नहीं होता है, क्योंकि भावसहित द्रव्यलिंग से कर्मप्रकृति के समूह का नाश होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#53

णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय जाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥55॥

भाव विरहित नग्नता कुछ कार्यकारी है नहीं।
यह जानकर भाओ निरन्तर आतम की भावना ॥५५॥

भावरहित नग्नत्व अकार्य है, कुछ कार्यकारी नहीं है। ऐसा जिन भगवान् ने कहा है। इसप्रकार जानकर हे धीर हे धैर्यवान् मुने! निरन्तर नित्य आत्मा की ही भावना कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#54

देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू ॥56॥

देहादि के संग से रहित अर रहित मान कषाय से।
अर आतमारत सदा ही जो भावलिंगी श्रमण वह ॥५६॥

भावलिंगी साधु ऐसा होता है देहादिक परिग्रह से रहित होता है तथा मान कषाय से रहित होता है और आत्मा में लीन होता है, वही आत्मा भावलिंगी है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#55

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ॥57॥

निज आत्म का अवलम्ब ले मैं और सबको छोड़ दूँ।
अर छोड़ ममताभाव को निर्मत्व को धारण करूँ ॥५७॥

भावलिंगी मुनि के इसप्रकार के भाव होते हैं- मैं परद्रव्य और परभावों से ममत्व (अपना मानना) को छोड़ता हूँ और मेरा निजभाव ममत्व रहित है उसको अंगीकार कर स्थित हूँ। अब मुझे आत्मा का ही अवलंबन है, अन्य सभी को छोड़ता हूँ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#56

"

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥58॥

निज ज्ञान में है आतमा दर्शन चरण में आतमा।
और संवर योग प्रत्याख्यान में है आतमा ॥५८॥

भावलिंगी मुनि विचारते हैं कि मेरे ज्ञानभाव प्रकट हैं, उसमें आत्मा की ही भावना है, ज्ञान कोई भिन्न वस्तु नहीं है, ज्ञान है वह आत्मा ही है, इस प्रकार ही दर्शन में भी आत्मा ही है। ज्ञान में स्थिर रहना चारित्र है, इसमें भी आत्मा ही है। प्रत्याख्यान (अर्थात् शुद्धनिश्चयनय के विषयभूत स्वद्रव्य के आलंबन के बल से) आगामी परद्रव्य का संबंध छोड़ना है, इस भाव में भी 'संवर' ज्ञानरूप रहना और परद्रव्य के भावरूप न परिणमना है, इस भाव में भी मेरा आत्मा ही है। 'और 'योग' का अर्थ एकाग्रचित्तरूप समाधि- ध्यान है, इस भाव में भी मेरा आत्मा ही है।

"

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥59॥

अरे मेरा एक शाश्वत आतमा दृगज्ञानमय।
अवशेष जो हैं भाव वे संयोगलक्षण जानने ॥५९॥

भावलिंगी मुनि विचारता है कि ज्ञान, दर्शन लक्षणरूप और शाश्वत अर्थात् नित्य ऐसा आत्मा है वही एक मेरा है। शेष भाव हैं, वे मुझसे बाह्य हैं, वे सब ही संयोगस्वरूप हैं, परद्रव्य हैं।

"

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#58

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं ॥60॥

चतुर्गति से मुक्त हो यदि शाश्वत सुख चाहते।
तो सदा निर्मलभाव से ध्याओ श्रमण शुद्धातमा ॥६०॥

हे मुनिजनों! यदि चार गतिरूप संसार से छूटकर शीघ्र शाश्वत सुखरूप मोक्ष तुम चाहो तो भाव से शुद्ध जैसे हो वैसे अतिशय विशुद्ध निर्मल आत्मा को भावो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#59

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ॥61॥

जो जीव जीवस्वभाव को सुधभाव से संयुक्त हो।
भावे सदा व जीव ही पावे अमर निर्वाण को ॥६१॥

जो भव्य-पुरुष जीव को भाता हुआ, भले भाव से संयुक्त हुआ जीव के स्वभाव को जानकर भावे, वह जरा-मरण का विनाश कर प्रगट निर्वाण को प्राप्त करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#60

जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो ॥62॥

चेतना से सहित ज्ञानस्वभावमय यह आतमा।
कर्मक्षय का हेतु यह है यह कहें परमातमा ॥६२॥

जिन सर्वज्ञदेव ने जीव का स्वरूप इस प्रकार कहा है जीव है वह चेतनासहित है और ज्ञानस्वभाव है, इस प्रकार जीव की भावना करना, जो कर्म के क्षय के निमित्त जानना चाहिए।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#61

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ॥63॥

जो जीव के सद्भाव को स्वीकारते वे जीव ही।
निर्देह निर्वच और निर्मल सिद्धपद को पावते ॥६३॥

जिन भव्यजीवों के जीव नामक पदार्थ सद्भावरूप हैं और सर्वथा अभावरूप नहीं हैं, वे भव्य-जीव देह से भिन्न तथा वचन-गोचरातीत सिद्ध होते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#62

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥64॥

चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥६४॥

हे भव्य! तू जीव का स्वरूप इस प्रकार जान - कैसा है? अरस अर्थात् पांच प्रकार के खट्टे, मीठे, कड़वे, कषाय के और खारे रस से रहित है। काला, पीला, लाल, सफेद और हरा इस प्रकार अरूप अर्थात् पाँच प्रकार के रूप से रहित है। दो प्रकार की गंध से रहित है। अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों के गोचर-व्यक्त नहीं है। चेतना गुणवाला है। अशब्द अर्थात् शब्द-रहित है। अलिंगग्रहण अर्थात् जिसका कोई चिह्न इन्द्रिय द्वारा ग्रहण में नहीं आता है। अनिर्दिष्ट-संस्थान अर्थात् चौकोर, गोल आदि कुछ आकार उसका कहा नहीं जाता है, इस प्रकार जीव जानो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#63

भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।
भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो होइ ॥65॥

अज्ञान नाशक पंचविध जो ज्ञान उसकी भावना।
भा भाव से हे आत्मन्! तो स्वर्ग-शिवसुख प्राप्त हो ॥६५॥

हे भव्यजन! तू यह ज्ञान पाँच प्रकार से भा, कैसा है यह ज्ञान? अज्ञान का नाश करने वाला है, कैसा होकर भा? भावना से भावित जो भाव उस सहित भा, शीघ्र भा, इससे तू दिव (स्वर्ग) और शिव (मोक्ष) का पात्र होगा।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#64

पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ॥66॥

श्रमण श्रावकपने का है मूल कारण भाव ही।
क्योंकि पठन अर श्रवण से भी कुछ नहीं हो भावबिन ॥६६॥

भावरहित पढ़ने-सुनने से क्या होता है? अर्थात् कुछ भी कार्यकारी नहीं है, इसलिये श्रावकत्व तथा मुनित्व इनका कारणभूत भाव ही है ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#67

दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
पारिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता ।।67।।

द्रव्य से तो नग्न सब नर नारकी तिर्यंच हैं।
पर भावशुद्धि के बिना श्रमणत्व को पाते नहीं ।।६७।।

द्रव्य से बाह्य में तो सब प्राणी नग्न होते हैं। नारकी जीव और तिर्यंच जीव तो निरन्तर वस्त्रादि से रहित नग्न ही रहते हैं। 'सकलसंघात' कहने से अन्य मनुष्य आदि भी कारण पाकर नग्न होते हैं तो भी परिणामों से अशुद्ध हैं, इसलिये भाव-श्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#66

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमइ।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं ॥68॥

हों नग्न पर दुख सहें अर संसारसागर में रुलें।
जिन भावना बिन नग्नतन भी बोधि को पाते नहीं ॥६८॥

नग्न सदा दुःख पाता है, नग्न सदा संसार-समुद्र में भ्रमण करता है और नग्न बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्वानुभव को नहीं पाता है, कैसा है वह नग्न - जो जिनभावना से रहित है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#67

अयसाण भावयेण य किं ते णग्गेम पावमलिणेण।
पेसुण्णाहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण ॥69॥

मान मत्सर हास्य ईर्ष्या पापमय परिणाम हों।
तो हे श्रमण तननगन होने से तुझे क्या साध्य है ॥६९॥

हे मुने! तेरे ऐसे नग्नपने से तथा मुनिपने से क्या साध्य है? कैसा है - पैशून्य अर्थात् दूसरे का दोष कहने का स्वभाव, हास्य अर्थात् दूसरे की हँसी करना, मत्सर अर्थात् अपने बराबर वाले से ईर्ष्या रखकर दूसरे को नीचा करने की बुद्धि, माया अर्थात् कुटिल परिणाम, ये भाव उसमें प्रचुरता से पाये जाते हैं, इसीलिये पाप से मलिन है और अयश अर्थात् अपकीर्ति का भाजन है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#68

पयडहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियइ ॥70॥

हे आत्मन् जिनलिंगधर तू भावशुद्धी पूर्वक।
भावशुद्धि के बिना जिनलिंग भी हो निरर्थक ॥७०॥

हे आत्मन्! तू अभ्यन्तर भाव-दोषों से अत्यन्त शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग अर्थात् बाह्य निर्ग्रन्थ लिंग प्रगट कर, भाव-शुद्धि के बिना द्रव्य-लिंग बिगड़ जायेगा, क्योंकि भाव-मलिन जीव बाह्य परिग्रह में मलिन होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#69

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ।।71।।

सद्धर्म का न वास जह तह दोष का आवास है।
है निरर्थक निष्फल सभी सद्ज्ञान बिन हे नटश्रमण ।।७१।।

धर्म अर्थात् अपना स्वभाव तथा दसलक्षण-स्वरूप में जिसका वास नहीं है वह जीव दोषों का आवास है अथवा जिसमें दोष रहते हैं वह इक्षु के फूल के समान है, जिसके न तो कुछ फल ही लगते हैं और न उसमें गंधादिक गुण ही पाये जाते हैं। इसलिये ऐसा मुनि तो नग्नरूप करके नट-श्रमण अर्थात् नाचनेवाले भाँड़ के स्वांग के समान है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले ॥72॥

जिनभावना से रहित रागी संग से संयुक्त जो।
निर्ग्रन्थ हों पर बोधि और समाधि को पाते नहीं ॥७२॥

जो मुनि राग अर्थात् अभ्यंतर पर-द्रव्य से प्रीति, वही हुआ संग अर्थात् परिग्रह उससे युक्त हैं और जिनभावना अर्थात् शुद्ध-स्वरूप की भावना से रहित हैं वे द्रव्य-निर्ग्रंथ हैं तो भी निर्मल जिनशासन में जो समाधि अर्थात् धर्म-शुक्लध्यान और बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-स्वरूप मोक्ष-मार्ग को नहीं पाते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7।

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए ॥73॥

मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से ॥७३॥

पहिले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर और भाव से अंतरंग नग्न हो, एकरूप शुद्धआत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करे, पीछे मुनि द्रव्य से बाह्य-लिंग जिन-आज्ञा से प्रकट करे, यह मार्ग है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#72

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो ॥74॥

हो भाव से अपवर्ग एवं भाव से ही स्वर्ग हो।
पर मलिनमन अर भाव विरहित श्रमण तो तिर्यंच हो ॥७४॥

भाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, और भाव-रहित श्रमण पाप-स्वरूप है, तिर्यंचगति का स्थान है तथा कर्म-मल से मलिन चित्तवाला है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#73

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विऊला।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ बोही सुभावेण ।।75।।

सुभाव से ही प्राप्त करते बोधि अर चक्रेश पद।
नर अमर विद्याधर नमें जिनको सदा कर जोड़कर ।।७५।।

सुभाव अर्थात् भले भाव से, मंद-कषाय-रूप विशुद्धभाव से, चक्रवर्ती आदि राजाओं की विपुल अर्थात् बड़ी लक्ष्मी पाता है। कैसी है - खचर (विद्याधर), अमर (देव) और मनुज (मनुष्य) इनकी अंजुलिमाला (हाथों की अंजुलि) की पंक्ति से संस्तुत (नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य) है और यह केवल लक्ष्मी ही नहीं पाता है, किन्तु बोधि (रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग) पाता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#74

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरउद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं ॥76॥

शुभ अशुभ एवं शुद्ध इसविधि भाव तीन प्रकार के।
रौद्रार्त तो हैं अशुभ किन्तु शुभ धरममय ध्यान है ॥७६॥

जिनवरदेव ने भाव तीन प्रकार का कहा है - 1 शुभ, 2 अशुभ और 3 शुद्ध। आर्त्त और रौद्र ये अशुभ ध्यान हैं तथा धर्म-ध्यान शुभ है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#75

सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदि जिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह ॥77॥

निज आत्मा का आत्मा में रमण शुद्धस्वभाव है।
जो श्रेष्ठ हैं वह आचरो जिनदेव का आदेश यह ॥७७॥

शुद्ध है वह अपना शुद्ध-स्वभाव अपने ही में है इस प्रकार जिनवर देव ने कहा है, वह जानकर इनमें जो कल्याणरूप हो उसको अंगीकार करो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#76

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं बोहि जिणसासणे जीवो ।।78।।

गल गये जिसके मान मिथ्या मोह वह समचित्त ही।
त्रिभुवन में सार ऐसे रत्नत्रय को प्राप्त हो ।।७८।।

यह जीव प्रगलित-मान-कषायः अर्थात् जिसका मानकषाय प्रकर्षता से गल गया है, किसी पर-द्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है और जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है इसीलिये समचित्त है, पर-द्रव्य में ममकार रूप मिथ्यात्व और इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष जिसके नहीं है, वह जिनशासन में तीन भुवन में सार ऐसी बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग को पाता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#77

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण ।।79।।

जो श्रमण विषयों से विरत वे सोलहकारणभावना।
भा तीर्थंकर नामक प्रकृति को बाँधते अतिशीघ्र ही ।।७९।।

जिसका चित्त इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है ऐसा श्रमण अर्थात् मुनि है वह सोलहकारण भावना को भाकर तीर्थंकर नाम प्रकृति को थोड़े ही समय में बाँध लेता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणंकुसएण मुणिपवर ॥80॥

तेरह क्रिया तप वार विध भा विविध मनवचकाय से।
हे मुनिप्रवर! मन मत्त गज वश करो अंकुश ज्ञान से ॥८०॥

हे मुनिप्रवर! मुनियों में श्रेष्ठ! तू बारह प्रकार के तप का आचरण कर और तेरह प्रकार की क्रिया मन-वचन-काया से भा और ज्ञानरूप अंकुश से मनरूप मतवाले हाथी को अपने वश में रख।

"

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#79

पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।
भावं भावियपुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं ॥४॥

वस्त्र विरहित क्षिति शयन भिक्षा असन संयम सहित।
जिन लिंग निर्मल भाव भावित भावना परिशुद्ध है ॥८१॥

निर्मल शुद्ध जिनलिंग इस प्रकार है - जहाँ पाँच प्रकार के वस्त्र का त्याग है, भूमि पर शयन है, दो प्रकार का संयम है, भिक्षा भोजन है, भावित-पूर्व अर्थात् पहिले शुद्ध आत्मा का स्वरूप पर-द्रव्य से भिन्न सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी हुआ, उसे बारंबार भावना से अनुभव किया इस प्रकार जिसमें भाव है, ऐसा निर्मल अर्थात् बाह्य-मल-रहित शुद्ध अर्थात् अन्तर्मल-रहित जिनलिंग है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#80

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं ॥82॥

ज्यों श्रेष्ठ चंदन वृक्ष में हीरा रतन में श्रेष्ठ है।
त्यों धर्म में भवभाविनाशक एक ही जिनधर्म है ॥८२॥

जैसे रत्नों में प्रवर (श्रेष्ठ) उत्तम व्रज (हीरा) है और जैसे तरुगण (बड़े वृक्ष) में उत्तम गोसीर (बावन चन्दन) है, वैसे ही धर्मों में उत्तम भाविभवमथन (आगामी संसार का मथन करने वाला) जिन-धर्म है, इससे मोक्ष होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#81

“

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥83॥

व्रत सहित पूजा आदि सब जिनधर्म में सत्कर्म हैं।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम आतमधर्म है ॥८३॥

जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है कि - पूजा आदिक में और व्रत-सहित होना है वह तो 'पुण्य' ही है तथा मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम वह 'धर्म ' है।

”

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#82

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥८४॥

अरु पुण्य भी है धर्म - ऐसा जान जो श्रद्धा करें।
वे भोग की प्राप्ति करें पर कर्म क्षय न कर सकें ॥८४॥

जो पुरुष पुण्य को धर्म जानकर श्रद्धान करते हैं, प्रतीति करते हैं, रुचि करते हैं और स्पर्श करते हैं उनके पुण्य भोग का निमित्त है। इससे स्वर्गादिक भोग पाता है और वह पुण्य, कर्म के क्षय का निमित्त नहीं होता है, यह प्रगट जानना चाहिये।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#83

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदु धम्मो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।85।।

रागादि विरहित आतमा रत आतमा ही धर्म है।
भव तरण-तारण धर्म यह जिनवर कथन का मर्म है ।।८६।।

यदि आत्मा रागादिक समस्त दोषों से रहित होकर आत्मा ही में रत हो जाय तो ऐसे धर्म को जिनेश्वर-देव ने संसार-समुद्र से तिरने का कारण कहा है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#84

अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥86॥

जो नहीं चाहे आतमा अर पुण्य ही करता रहे।
वह मुक्ति को पाता नहीं संसार में रुलता रहे ॥८६॥

अथवा जो पुरुष आत्मा का इष्ट नहीं करता है, उसका स्वरूप नहीं जानता है, अंगीकार नहीं करता है और सब प्रकार के समस्त पुण्य को करता है, तो भी सिद्धि (मोक्ष) को नहीं पाता है किन्तु वह पुरुष संसार ही में भ्रमण करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#85

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ॥87॥

इसलिए पूरी शक्ति से निज आतमा को जानकर।
श्रद्धा करो उसमें रमो नित मुक्तिपद पा जाओगे ॥८७॥

पहिले कहा था कि आत्मा का धर्म तो मोक्ष है, उसी कारण से कहते हैं कि - हे भव्यजीवो! तुम उस आत्मा को प्रयत्न-पूर्वक सब प्रकार के उद्यम करके यथार्थ जानो, उस आत्मा का श्रद्धान करो, प्रतीति करो, आचरण करो। मन-वचन-काय से ऐसे करो जिससे मोक्ष पावो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#86

“

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं ॥८८॥

सप्तम नरक में गया तन्दुल मत्स्य हिंसक भाव से।
यह जानकर हे आत्मन्! नित करो आतमभावना ॥८८॥

हे भव्यजीव! तू देख, शालिशिक्थ (तन्दुल नाम का मत्स्य) वह भी अशुद्ध-भाव-स्वरूप होता हुआ महानरक (सातवें नरक) में गया, इसलिये तुझे उपदेश देते हैं कि अपनी आत्मा को जानने के लिए निरंतर जिनभावना कर।

”

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#87

बाहिसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं ॥८९॥

आतमा की भावना बिन गिरि-गुफा आवास सब।
अर ज्ञान अध्ययन आदि सब करनी निरर्थक जानिये ॥८९॥

जो पुरुष भाव रहित हैं, शुद्ध आत्मा की भावना से रहित हैं और बाह्य आचरण से सन्तुष्ट हैं, उनके बाह्य परिग्रह का त्याग है वह निरर्थक है। गिरि (पर्वत) दरी (पर्वतकी गुफा) सरित् (नदीके पास) कंदर (पर्वतके जलसे चीरा हुआ स्थान) इत्यादि स्थानों में आवास (रहना) निरर्थक है। ध्यान करना, आसन द्वारा मन को रोकना, अध्ययन (पढ़ना) - ये सब निरर्थक हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#44

भंजसु इन्दियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु ॥९०॥

इन लोकरंजक बाह्यव्रत से अरे कुछ होगा नहीं।
इसलिए पूर्ण प्रयत्न से मन इन्द्रियों को वश करो ॥९०॥

हे मुने! तू इन्द्रियों की सेना है उसका भंजन कर, विषयों में मत रम, मनरूप बंदर को प्रयत्न-पूर्वक बड़ा उद्यम करके भंजन कर, वशीभूत कर और बाह्यव्रत का भेष लोक को रंजन करनेवाला मत धारण करे।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#८१

णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइयपवयणगुरुणं करेहि भंत्ते जिणाणाए ॥१॥

मिथ्यात्व अर नोकषायों को तजो शुद्ध स्वभाव से।
देव प्रवचन गुरु की भक्ति करो आदेश यह ॥९१॥

हे मुने! तू नव जो हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद - ये नो कषायवर्ग तथा मिथ्यात्व इनको भाव-शुद्धि द्वारा छोड़ और जिनआज्ञा से चैत्य, प्रवचन, गुरु इनकी भक्ति कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९०

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं ॥१२॥

तीर्थंकरों ने कहा गणधरदेव ने गूँथा जिसे।
शुद्धभाव से भावो निरन्तर उस अतुल श्रुतज्ञान को ॥१२॥

हे मुने! तू जिस श्रुतज्ञान को तीर्थंकर भगवान ने कहा और गणधर देवों ने गूंथा अर्थात् शास्त्र-रूप रचना की उसकी सम्यक् प्रकार भाव शुद्ध कर निरन्तर भावना कर। कैसा है वह श्रुतज्ञान? अतुल है, इसके बराबर अन्य मत का कहा हुआ श्रुत-ज्ञान नहीं है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९।

पीऊण णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥९३॥

श्रुतज्ञानजल के पान से ही शान्त हो भवदुखतृषा।
त्रैलोक्यचूड़ामणी शिवपद प्राप्त हो आनन्दमय ॥९३॥

पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध करने पर ज्ञानरूप जल को पीकर सिद्ध होते हैं। कैसे हैं सिद्ध? निर्मथ्य अर्थात् मथा न जावे ऐसे तृषादाह शोष से रहित हैं, इस प्रकार सिद्ध होते हैं; ज्ञानरूप जल पीने का यह फल है। सिद्धशिवालय अर्थात् मुक्तिरूप महल में रहने वाले हैं, लोक के शिखर पर जिनका वास है। इसीलिये कैसे हैं? तीन भुवन के चूड़ामणि हैं, मुकुटमणि हैं तथा तीन भुवन में ऐसा सुख नहीं है, ऐसे परमानंद अविनाशी सुख को वे भोगते हैं। इस प्रकार वे तीन भुवन के मुकुटमणि हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९२

दस दस दो सुपरीसह सहहि मुणी सयलकाल काएण।
सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमोत्तूण ॥९५॥

जिनवरकथित बाईस परीषह सहो नित समचित्त हो।
बचो संयमघात से हे मुनि! नित अप्रमत्त हो ॥९४॥

हे मुने! तू दस दस दो अर्थात् बाईस जो सुपरीषह अर्थात् अतिशयकर सहने योग्य को सूत्रेण अर्थात् जैसे जिनवचन में कहे हैं उसी रीति से निःप्रमादी होकर संयम का घात दूर कर और अपनी काय से सदाकाल निरंतर सहन कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९३

जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदएण।
तह साहू वि म भिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो ॥९५॥

जल में रहे चिरकाल पर पत्थर कभी भिदता नहीं।
त्यों परीषह उपसर्ग से साधु कभी भिदता नहीं ॥९५॥

जैसे पाषाण जल में बहुत काल तक रहने पर भी भेद को प्राप्त नहीं होता है वैसे ही साधु उपसर्ग-परीषहों से नहीं भिदता है।

भाव पाहुड जी, आचार्य कुंदकुंद देव

#९५

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि।
भावरहिएण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ॥९६॥

भावना द्वादश तथा पच्चीस व्रत की भावना।
भावना बिन मात्र कोरे वेष से क्या लाभ है ॥९६॥

हे मुने! तू अनुप्रेक्षा अर्थात् अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा हैं उनकी भावना कर और अपर अर्थात् अन्य पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावना कही हैं उनकी भावना कर, भावरहित जो बाह्यलिंग है उससे क्या कर्त्तव्य है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं ॥97॥

हैं सर्वविरती तथापि तत्त्वार्थ की भा भावना।
गुणथान जीवसमास की भी तू सदा भा भावना ॥९७॥

हे मुने! तू सब परिग्रहादिक से विरक्त हो गया है, महाव्रत सहित है तो भी भाव विशुद्धि के लिये नव पदार्थ, सप्त तत्त्व, चौदह जीवसमास, चौदह गुणस्थान इनके नाम लक्षण भेद इत्यादिकों की भावना कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#96

णवविहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण।
मेहुणसण्णासत्तो भमिओ सि भवण्णवे भीमे ॥९८॥

भयंकर भव-वन विषैं भ्रमता रहा आशक्त हो।
बस इसलिए नवकोटि से ब्रह्मचर्य को धारण करो ॥९८॥

हे जीव! तू पहिले दस प्रकार का अब्रह्म है उसको छोड़कर नव प्रकार का ब्रह्मचर्य है उसको प्रगट कर, भावों में प्रत्यक्ष कर। यह उपदेश इसलिए दिया है कि तू मैथुनसंज्ञा जो कामसेवन की अभिलाषा उसमें आसक्त होकर अशुद्ध भावों से इस भीम (भयानक) संसाररूपी समुद्र में भ्रमण करता रहा।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#97

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥९९॥

भाववाले साधु साधे चतुर्विध आराधना।
पर भाव विरहित भटकते चिरकाल तक संसार में ॥९९॥

हे मुनिवर! जो भाव सहित है सो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना के चतुष्क को पाता है, वह मुनियों में प्रधान है और जो भावरहित मुनि है सो बहुत काल तक दीर्घसंसार में भ्रमण करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#98

पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं।
दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए ।।100।।

तिर्यंच मनुज कुदेव होकर द्रव्यलिंगी दुःख लहें।
पर भावलिंगी सुखी हों आनन्दमय अपवर्ग में ।।१००।।

जो भावश्रमण हैं, भावमुनि हैं, वे जिनमें कल्याण की परंपरा है ऐसे सुखों को पाते हैं और जो द्रव्य-श्रमण हैं वे तिर्यंच मनुष्य कुदेव योनि में दुःखों को पाते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

छायालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण।
पत्तो सि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो ।।101।।

अशुद्धभावों से छियालिस दोष दूषित असन कर।
तिर्यंचगति में दुख अनेकों बार भोगे विवश हो ।।१०१।।

हे मुने! तूने अशुद्ध भाव से छियालीस दोषों से दूषित अशुद्ध अशन (आहार) ग्रस्या (खाया) इस कारण से तिर्यंचगति में पराधीन होकर महान (बड़े) व्यसन (कष्ट) को प्राप्त किया।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#100

सच्चित्तभत्तपाणं गिद्धी दप्पेणऽधी पभूत्तूण।
पत्तो सि तिव्वदुक्खं अणाइकालेण तं चिंत ॥102॥

अतिगृद्धता अर दर्प से रे सचित्त भोजन पान कर।
अति दुःख पाये अनादि से इसका भी जरा विचार कर ॥१०२॥

हे जीव! तू दुर्बुद्धि (अज्ञानी) होकर अतिचार सहित तथा अतिगर्व (उद्धतपने) से सचित्त भोजन तथा पान, जीवसहित आहार-पानी लेकर अनादिकाल से तीव्र दुःख को पाया, उसका चिन्तवन कर - विचार कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#101

कंदं मूलं बीयं पुप्फं पत्तादि किंचि सच्चित्तं।
असिऊण माणगव्वं भमिओ सि अणंतसंसारे ॥103॥

अर कंद मूल बीज फूल पत्र आदि सचित्त सब।
सेवन किये मदमत्त होकर भ्रमें भव में आजतक ॥१०३॥

कंद-जमीकंद आदिक, बीज-चना आदि अन्नादिक, मूल-अदरक मूली गाजर आदिक, पुष्प-फूल, पत्र नागरवेल आदिक, इनको आदि लेकर जो भी कोई सचित्त वस्तुथी उसे मान (गर्व) करके भक्षण की। उससे हे जीव! तूने अनंत-संसार में भ्रमण किया।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#102

विणयं पचपयारं पालहि मणवयणकायजोएण।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति ।।।05।।

विनय पंच प्रकार पालो मन वचन अर काय से।
अविनयी को मुक्ति की प्राप्ति कभी होती नहीं ।।१०४।।

हे मुने! जिस कारण से अविनयी मनुष्य भले प्रकार विहित जो मुक्ति उसको नहीं पाते हैं अर्थात् अभ्युदय तीर्थंकरादि सहित मुक्ति नहीं पाते हैं, इसलिये हम उपदेश करते हैं कि - हाथ जोड़ना, चरणों में गिरना, आने पर उठना, सामने जाना और अनुकूल वचन कहना यह पाँच प्रकार का विनय है अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और इनके धारक पुरुष इनका विनय करना, ऐसे पाँच प्रकार के विनय को तू मन-वचन-काय तीनों योगों से पालन कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#103

णियसत्तीए महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि।
तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं ॥105॥

निजशक्ति के अनुसार प्रतिदिन भक्तिपूर्वक चाव से।
हे महायश! तुम करो वैयावृत्ति दशविध भाव से ॥१०५॥

हे महायश! हे मुने! जिनभक्ति में तत्पर होकर, भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेदरूप वैयावृत्य को सदाकाल तू अपनी शक्तिके अनुसार कर। वैयावृत्य के दूसरे दुःख (कष्ट) आने पर उसकी सेवा-चाकरी करने को कहते हैं। इसके दस भेद हैं— 1 आचार्य, 2 उपाध्याय, 3 तपस्वी, 4 शैक्ष्य, 5 ग्लान, 6 गण, 7 कुल, 8 संघ, 9 साधु, 10 मनोज्ञ - ये दस मुनि के हैं। इनका वैयावृत्य करते हैं इसलिये दस भेद कहे हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#104

जं किंचि कयं दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेण।
तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ।।106।।

अरे मन वचन काय से यदि हो गया कुछ दोष तो।
मान माया त्याग कर गुरु के समक्ष प्रगट करो ।।१०६।।

हे मुने! जो कुछ मन-वचन-काय के द्वारा अशुभ भावों से प्रतिज्ञा में दोष लगा हो उसको गुरु के पास अपना गौरव (महंतपनेका गर्व) छोड़कर और माया (कपट) छोड़कर मन-वचन-काय को सरल करके गर्हा कर अर्थात् वचन द्वारा प्रकाशित कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#105

दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा।
कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सवणा ॥107॥

निष्ठुर कटुक दुर्जन वचन सत्पुरुष सहें स्वभाव से।
सब कर्मनाशन हेतु तुम भी सहो निर्मम भाव से ॥१०७॥

सत्पुरुष मुनि हैं वे दुर्जन के वचनरूप चपेट जो निष्ठुर (कठोर) दयारहित और कटुक (सुनते ही कानों को कड़े शूल समान लगे) ऐसी चपेट है उसको सहते हैं। वे किसलिये सहते हैं? कर्मों का नाश होने के लिये सहते हैं। पहिले अशुभ-कर्म बाँधे थे उसके निमित्त से दुर्जन ने कटुक वचन कहे, आपने सुने, उसको उपशम परिणाम से आप सहे तब अशुभ-कर्म उदय होय खिर गये। ऐसे कटुक-वचन सहने से कर्म का नाश होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#106

पावं खवइ असेस खमाए पडिमंडिओ य मुणपवरो।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ ॥108॥

अर क्षमा मंडित मुनि प्रकट ही पाप सब खण्डित करें।
सुरपति उरग-नरनाथ उनके चरण में वंदन करें ॥१०८॥

जो मुनिप्रवर (मुनियों में श्रेष्ठ, प्रधान) क्रोध से अभावरूप क्षमा से मंडित है वह मुनि समस्त पापों का क्षय करता है और विद्याधर-देव-मनुष्यों द्वारा प्रशंसा करने योग्य निश्चय से होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#107

इय णाऊण खमागुण खमेहि तिविहेण सयल जीवाणं।
चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह ।।।07१।।

यह जानकर हे क्षमागुणमुनि ! मन-वचन अर काय से ।
सबको क्षमा कर बुझा दो क्रोधादि क्षमास्वभाव से ।।१०९।।

हे क्षमागुण मुने! (जिसके क्षमागुण हैं ऐसे मुनि का संबोधन है) इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार क्षमागुण को जान और सब जीवों पर मन-वचन-काय से क्षमा कर तथा बहुत काल से संचित क्रोधरूपी अग्नि को क्षमारूप जल से सींच अर्थात् शमन कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#108

दिक्खाकालाईयं भावहि अवियारदंसणविसुद्धो।
उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण ||110||

असार हैं संसार सब यह जान उत्तम बोधि की ।
अविकार मन से भावना भा अरे दीक्षाकाल सम ||११०||

हे मुने! तू संसार को असार जानकर उत्तमबोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की प्राप्ति के निमित्त अविकार अर्थात् अतिचार-रहित निर्मल सम्यग्दर्शन सहित होकर दीक्षाकाल आदिक की भावना कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#109

सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं ॥111॥

अंतरंग शुद्धिपूर्वक तू चतुर्विध द्रवलिंग धर ।
क्योंकि भाव बिना द्रवलिंग कार्यकारी है नहीं ॥१११॥

हे मुनिवर! तू अभ्यंतरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर चार प्रकार के बाह्यलिंग का सेवन कर, क्योंकि जो भाव-रहित होते हैं उनके प्रगटपने बाह्य-लिंग अकार्य है अर्थात् कार्यकारी नहीं है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णाहि मोहिओ सि तुमं।
भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ।।।।2।।

आहार भय मैथुन परीग्रह चार संज्ञा धारकर ।
भ्रमा भववन में अनादिकाल से हो अन्य वश ।।११२।।

हे मुने! तूने आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, इन चार संज्ञाओं से मोहित होकर अनादिकाल से पराधीन होकर संसाररूप वन में भ्रमण किया।

#111

बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि।
पालहि भावविशुद्धो पूयालाहं ण ईहंतो ।।113।।

भावशुद्धिपूर्वक पूजादि लाभ न चाहकर ।
निज शक्ति से धारण करो आतपन आदि योग को ।।११३।।

हे मुनिवर! तू भाव से विशुद्ध होकर पूजा-लाभादिक को नहीं चाहते हुए बाह्यशयन, आतापन, वृक्षमूलयोग धारण करना, इत्यादि उत्तर-गुणों का पालन कर ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

भावहि पढमं तच्चं बिदियं तदियं चउत्थ पंचमयं।
तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं ॥114॥

प्रथम द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ पंचम तत्त्व की ।
आद्यन्तरहित त्रिवर्ग हर निज आत्मा की भावना ॥११४॥

हे मुने! तू प्रथम जो जीव-तत्त्व उसका चिन्तवन कर, द्वितीय अजीव-तत्त्व का चिन्तन कर, तृतीय आस्रव-तत्त्व का चिन्तन कर, चतुर्थ बन्ध-तत्त्व का चिन्तन कर, पंचम संवर-तत्त्व का चिन्तन कर, और त्रिकरण अर्थात् मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से शुद्ध होकर आत्म-स्वरूप का चिन्तन कर; जो आत्मा अनादिनिधन है और त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम इनको हरने वाला है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं।
ताव ण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं ॥115॥

भावों निरन्तर बिना इसके चिन्तवन अर ध्यान के ।
जरा-मरण से रहित सुखमय मुक्ति की प्राप्ति नहीं ॥११५॥

हे मुने! जब तक वह जीवादि तत्त्वों को नहीं भाता है और चिन्तन करने योग्य का चिन्तन नहीं करता है तब तक जरा और मरण से रहित मोक्ष-स्थान को नहीं पाता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#114

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥116॥

परिणाम से ही पाप सब अर पुण्य सब परिणाम से ।
यह जैनशासन में कहा बंधमोक्ष भी परिणाम से ॥११६॥

पाप-पुण्य, बंध-मोक्ष का कारण परिणाम ही को कहा है। जीव के मिथ्यात्व, विषय-कषाय, अशुभ-लेश्यारूप तीव्र परिणाम होते हैं, उनसे तो पापास्रव का बंध होता है। परमेष्ठी की भक्ति, जीवों पर दया इत्यादिक मंद-कषाय शुभ-लेश्यारूप परिणाम होते हैं, इससे पुण्यास्रव का बंध होता है। शुद्ध-परिणाम-रहित विभावरूप परिणाम से बंध होता है। शुद्धभाव के सन्मुख रहना, उसके अनुकूल शुभ परिणाम रखना, अशुभ परिणाम सर्वथा दूर करना, यह उपदेश है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

मिच्छत्त तह कसायासंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं
बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो ॥117॥

जिनवच पराग्मुख जीव यह मिथ्यात्व और कषाय से ।
ही बांधते हैं करम अशुभ असंयम से योग से ॥११७॥

मिथ्यात्व, कषाय, असंयम और योग जिनमें अशुभ-लेश्या पाई जाती है इसप्रकार के भावों से यह जीव जिनवचन से पराङ्मुख होता है - अशुभकर्म को बाँधता है वह पाप ही बाँधता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#116

"

तव्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो।
दुविहपयारं बंधइ संखेवेणेव वज्जरियं ॥११४॥

भावशुद्धीवंत अर जिन-वचन अराधक जीव ही ।
हैं बाँधते शुभकर्म यह संक्षेप में बंधन-कथा ॥११८॥

उस पूर्वोक्त जिनवचन का श्रद्धानी मिथ्यात्व-रहित सम्यग्दृष्टि जीव शुभ-कर्म को बाँधता है जिसने कि - भावों में विशुद्धि प्राप्त की है। ऐसे दोनों प्रकार के जीव शुभाशुभ कर्म को बाँधते हैं, यह संक्षेप से जिन-भगवान ने कहा है।

"

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#117

णाणावरणादीहिं य अट्ठहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं।
डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां ।।।।१।।

अष्टकर्मों से बंधा हूँ अब इन्हें मैं दग्धकर ।
ज्ञानादिगुण की चेतना निज में अनंत प्रकट करूँ ।।११६।।

हे मुनिवर! तू ऐसी भावना कर कि मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्ठित हूँ, इसलिये इनको भस्म करके अनन्तज्ञानादि गुण जिनस्वरूप चेतना को प्रगट करूँ।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#118

सीलसहस्सट्ठारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं।
भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा ॥।120॥

शील अठदशसहस उत्तर गुण कहे चौरासी लख ।
भा भावना इन सभी की इससे अधिक क्या कहें हम ॥१२०॥

शील अठारह हजार भेदरूप हैं और उत्तरगुण चौरासी लाख हैं। आचार्य कहते हैं कि हे मुने! बहुत झूठे प्रलापरूप निरर्थक वचनों से क्या? इन शीलों को और उत्तरगुणों को सबको तू निरन्तर भा, इनकी भावना-चिन्तन-अभ्यास निरन्तर रख, जैसे इनकी प्राप्ति हो वैसे ही कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#119

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण।
रुद्दट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥121॥

रौद्रार्त वश चिरकाल से दुःख सहे अगणित आजतक ।
अब तज इन्हें ध्या धरमसुखमय शुक्ल भव के अन्ततक ॥१२१॥

हे मुनि! तू आर्त्त-रौद्र ध्यान को छोड़ और धर्म-शुक्लध्यान हैं उन्हें ही कर, क्योंकि रौद्र और आर्त्तध्यान तो इस जीव ने अनादिकाल से बहुत समय तक किये हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#120

जे के वि दव्वसवणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति।
छिंदंति भावसवणा झाणकुढारेहिं भवरुक्खं ॥122॥

इन्द्रिय-सुखाकुल द्रव्यलिंगी कर्मतरु नहिं काटते ।
पर भावलिंगी भवतरु को ध्यान करवत काटते ॥१२२॥

कई द्रव्य-लिंगी श्रमण हैं, वे तो इन्द्रिय-सुख में व्याकुल हैं, उनके यह धर्म-शुक्ल-ध्यान नहीं होता है। वे तो संसाररूपी वृक्ष को काटने में समर्थ नहीं हैं, और जो भाव-लिंगी श्रमण हैं, वे ध्यानरूपी कुल्हाड़े से संसाररूपी वृक्ष को काटते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#121

जह दीवो गब्भहरे मारुयबाहाविवज्जिओ जलइ।
तह रायाणिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ ॥123॥

ज्यों गर्भगृह में दीप जलता पवन से निर्बाध हो ।
त्यों जले निज में ध्यान दीपक राग से निर्बाध हो ॥१२३॥

जैसे दीपक गर्भगृह अर्थात् जहाँ पवन का संचार नहीं है ऐसे घर के मध्य में पवन की बाधा-रहित निश्चल होकर जलता है (प्रकाश करता है), वैसे ही अंतरंग मन में रागरूपी पवन से रहित ध्यानरूपी दीपक भी जलता है, एकाग्र होकर ठहरता है, आत्मरूप को प्रकाशित करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥124॥

शुद्धात्म एवं पंचगुरु का ध्यान धर इस लोक में ।
वे परम मंगल परम उत्तम और वे ही हैं शरण ॥१२४॥

हे मुने! तू पंच गुरु अर्थात् पंचपरमेष्ठी का ध्यान कर। यहाँ 'अपि' शब्द शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान को सूचित करता है। पंच परमेष्ठी कैसे हैं? मंगल अर्थात् पाप के नाशक अथवा सुखदायक और चउशरण अर्थात् चार शरण तथा 'लोक' अर्थात् लोक के प्राणियों से अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलीप्रणीत धर्म, ये परिकरित अर्थात् परिवारित हैं - युक्त (सहित) हैं। नर-सुर-विद्याधर सहित हैं, पूज्य हैं, इसलिये वे 'लोकोत्तम' कहे जाते हैं, आराधना के नायक हैं, वीर हैं, कर्मों के जीतने को सुभट हैं और विशिष्ट लक्ष्मी को प्राप्त हैं तथा देते हैं। इसप्रकार पंच परम गुरु का ध्यान कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#123

“

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
बाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥125॥

आनन्दमय मृतु जरा व्याधि वेदना से मुक्त जो ।
वह ज्ञानमय शीतल विमल जल पियो भविजन भाव से ॥१२५॥

भव्य-जीव ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल को सम्यक्त्वभाव सहित पीकर और व्याधिरूप जरा-मरण की वेदना (पीड़ा) को भस्म करके मुक्त अर्थात् संसार से रहित 'शिव' अर्थात् परमानंद सुखरूप होते हैं।

”

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#124

यह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे।
तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भावसवणाणं ।।126।।

ज्यों बीज के जल जाने पर अंकुर नहीं उत्पन्न हो ।
कर्मबीज के जल जाने पर न भवांकुर उत्पन्न हो ।।१२६।।

जैसे पृथ्वी-तल पर बीज के जल जाने पर उसका अंकुर फिर नहीं उगता है, वैसे ही भाव-लिंगी श्रमण के संसार का कर्मरूपी बीज दग्ध होता है इसलिये संसाररूप अंकुर फिर नहीं होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#125

भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं जव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होह ॥127॥

भावलिंगी सुखी होते द्रव्यलिंगी दुःख लहें ।
गुण-दोष को पहिचानकर सब भाव से मुनिपद गहें ॥१२७॥

भावश्रमण तो सुखों को पाता है और द्रव्यश्रमण दुःखों को पाता है, इस प्रकार गुण-दोषों को जानकर हे जीव! तू भाव सहित संयमी बन।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#126

तित्थयरगणहराइं अब्भुदयपरंपराइं सोक्खाइं
पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं बज्जरियं ।।।28।।

भाव से जो हैं श्रमण जिनवर कहें संक्षेप में ।
सब अभ्युदय के साथ ही वे तीर्थंकर गणधर बनें ।।१२८।।

जो भावसहित मुनि हैं वे अभ्युदय-सहित तीर्थंकर-गणधर आदि पदवी के सुखों को पाते हैं, यह संक्षेप में कहा है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#127

“

ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं।
भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाणं ॥129॥

जो ज्ञान-दर्शन-चरण से हैं शुद्ध माया रहित हैं ।
रे धन्य हैं वे भावलिंगी संत उनको नमन है ॥१२९॥

आचार्य कहते हैं कि जो मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ (विशिष्ट) ज्ञान और निर्दोष चारित्र इनसे शुद्ध हैं इसीलिये भाव सहित हैं और प्रणष्ट हो गई है माया अर्थात् कपट परिणाम जिनके ऐसे हैं वे धन्य हैं। उनके लिये हमारा मन-वचन-काय से सदा नमस्कार हो।

”

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#128

इड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो ॥130॥

जो धीर हैं गम्भीर हैं जिन भावना से सहित हैं।
वे ऋद्धियों में मुग्ध न हों अमर विद्याधरों की ॥१३०॥

जिनभावना (सम्यक्त्व भावना) से वासित जीव किंनर, किंपुरुष देव, कल्पवासी देव और विद्याधर, इनसे विक्रियारूप विस्तार की गई अतुल-ऋद्धियों में मोह को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव कैसा है? धीर है, दृढ़बुद्धि है अर्थात् निःशंकित अंग का धारक है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#129

किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं।
जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो ॥13॥

इन ऋद्धियों से इसतरह निरपेक्ष हों जो मुनि धवल ।
क्यों अरे चाहें वे मुनी निस्सार नरसुर सुखों को ॥१३१॥

सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वोक्त प्रकार की भी ऋद्धि को नहीं चाहता है तो मुनिधवल अर्थात् मुनि-प्रधान है वह अन्य जो मनुष्य देवों के सुख-भोगादिक जिनमें अल्प सार है उनमें क्या मोह को प्राप्त हो? कैसा है मुनिधवल? मोक्ष को जानता है, उस ही की तरफ दृष्टि है, उस ही का चिन्तन करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#130

उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं।
इन्दियबलं ण वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ।।132।।

करले भला तबतलक जबतक वृद्धपन आवे नहीं ।
अरे देह में न रोग हो बल इन्द्रियों का ना घटे ।।१३२।।

हे मुने! जब तक तेरे जरा (बुढ़ापा) न आवे तथा जब तक रोगरूपी अग्नि तेरी देहरूपी कुटी को भस्म न करे और जब तक इन्द्रियों का बल न घटे तब तक अपना हित कर लो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#131

छज्जीव छडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं।
कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं ।।133।।

छह काय की रक्षा करो षट् अनायतन को त्यागकर ।
और मन-वच-काय से तू ध्या सदा निज आतमा ।।१३३।।

हे मुनिवर! तू छहकाय के जीवों पर दया कर और छह अनायतनों को मन, वचन, काय के योगों से छोड़ तथा अपूर्व जो पहिले न हुआ ऐसा महासत्त्व अर्थात् सब जीवों में व्यापक (ज्ञायक) महासत्त्व चेतना भाव को भा।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#132

दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण।
भोयसुहकारणट्ठं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं ।।134।।

भवभ्रमण करते आजतक मन-वचन एवं काय से ।
दश प्राणों का भोजन किया निज पेट भरने के लिये ।।१३४।।

हे मुने! तूने अनंत भवसागर में भ्रमण करते हुए, सकल त्रस, स्थावर, जीवों के दश प्रकार के प्राणों का आहार, भोग-सुख के कारण के लिये मन, वचन, काय से किया।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#133

पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि।
उप्पजंत मरंतो पत्तो सि णिरंतरं दुक्खं ॥135॥

इन प्राणियों के घात से योनी चौरासी लाख में ।
बस जन्मते मरते हुये, दुख सहे तूने आजतक ॥१३५॥

हे मुने! हे महायश! तूने प्राणियों के घात से चौरासी लाख योनियों के मध्य में उत्पन्न होते हुए और मरते हुए निरंतर दुःख पाया।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#134

जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए ।।136।।

यदि भवभ्रमण से ऊबकर तू चाहता कल्याण है ।
तो मन वचन अर काय से सब प्राणियों को अभय दे ।।१३६।।

हे मुने! जीवों को और प्राणीभूत सत्त्वों को अपना परंपरा से कल्याण और सुख होने के लिये मन, वचन, काय की शुद्धता से अभयदान दे।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#135

असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी
सत्तट्ठी अण्णाणी वेणईया होंति बत्तीसा ।।।37।।

अक्रियावादी चुरासी बत्तीस विनयावादि हैं ।
सौ और अस्सी क्रियावादी सरसठ अरे अज्ञानि हैं ।।१३७।।

एकसौ अस्सी क्रियावादी हैं, चौरासी अक्रियावादियों के भेद हैं, अज्ञानी सड़सठ भेदरूप हैं और विनयवादी बत्तीस हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#136

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ।।138।।

गुड़-दूध पीकर सर्प ज्यों विषरहित होता है नहीं ।
अभव्य त्यों जिनधर्म सुन अपना स्वभाव तजे नहीं ।।१३८।।

अभव्य-जीव भले प्रकार जिन-धर्म को सुनकर भी अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता है। यहाँ दृष्टांत है कि सर्प गुड़सहित दूध को पीते रहने पर भी विष-रहित नहीं होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#137

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्यजीवो ण रोचेदि ।।।३९।।

मिथ्यात्व से आछन्नबुद्धि अभव्य दुर्मति दोष से ।
जिनवरकथित जिनधर्म की श्रद्धा कभी करता नहीं ।।१३९।।

दुर्मत जो सर्वथा एकान्त मत, उनसे प्ररूपित अन्यमत, वे ही हुए दोष उनके द्वारा अपनी दुर्बुद्धि से (मिथ्यात्वसे) आच्छादित है बुद्धि जिसकी, ऐसा अभव्य-जीव है उसे जिनप्रणीत धर्म नहीं रुचता है, वह उसकी श्रद्धा नहीं करता है, उसमें रुचि नहीं करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#138

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ ।।।40।।

तप तपैं कुत्सित और कुत्सित साधु की भक्ति करैं ।
कुत्सित गति को प्राप्त हों रे मूढ़ कुत्सितधर्मरत ।।१४०।।

आचार्य कहते हैं कि जो कुत्सित (निंद्य) मिथ्या-धर्म में रत (लीन) है जो पाखंडी निंद्यभेषियों की भक्ति-संयुक्त है, जो निंद्य मिथ्यात्व-धर्म पालता है, मिथ्यादृष्टियों की भक्ति करता है और मिथ्या अज्ञानतप करता है, वह दुर्गति ही पाता है, इसलिये मिथ्यात्व छोड़ना, यह उपदेश है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो
भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि ॥१४१॥

कुनय अर कुशास्त्र मोहित जीव मिथ्यावास में ।
घूमा अनादिकाल से हे धीर ! सोच विचार कर ॥१४१॥

इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्व का आवास (स्थान) यह मिथ्यादृष्टियों का संसार में कुनय - सर्वथा एकान्त उन सहित कुशास्त्र, उनसे मोहित (बेहोश) हुआ यह जीव अनादिकाल से लगाकर संसार में भ्रमण कर रहा है, ऐसे हे धीर मुने! तू विचार कर।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#140

पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठि भेया उमग्ग मुत्तूण
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥142॥

तीन शत त्रिषष्ठि पाखण्डी मतों को छोड़कर ।
जिनमार्ग में मन लगा इससे अधिक मुनिवर क्या कहें ॥१४२॥

हे जीव! तीन सौ त्रेसठ पाखण्डियों के मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में अपने मन को रोक (लगा) यह संक्षेप है और निरर्थक प्रलापरूप कहने से क्या?।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जीवविमुक्को सबओ दंसणमुक्को य होइ चलसबओ
सबओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसबओ ।।।43।।

अरे समकित रहित साधु सचल मुरदा जानिये ।
अपूज्य है ज्यों लोक में शव त्योंहि चलशव मानिये ।।१४३।।

लोक में जीवरहित शरीर को 'शव' कहते हैं, 'मृतक' या मुरदा कहते हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शनरहित पुरुष 'चलता हुआ' मृतक है। मृतक तो लोक में अपूज्य है, अग्नि से जलाया जाता है या पृथ्वी में गाड़ दिया जाता है और 'दर्शनरहित चलता हुआ मुरदा' लोकोत्तर जो मुनि-सम्यग्दृष्टि उनमें अपूज्य है, वे उसको वंदनादि नहीं करते हैं। मुनिभेष धारण करता है तो भी उसे संघ के बाहर रखते हैं अथवा परलोक में निंद्यगति पाकर अपूज्य होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#142

जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं ।।।५५।।

तारागणों में चन्द्र ज्यों अर मृगों में मृगराज ज्यों ।
श्रमण-श्रावक धर्म में त्यों एक समकित जानिये।।१४४।।

जैसे तारकाओं के समूह में चंद्रमा अधिक है और मृगकुल अर्थात् पशुओं के समूह में मृगराज (सिंह) अधिक है, वैसे ही ऋषि (मुनि) और श्रावक इन दो प्रकार के धर्मों में सम्यक्त्व है वह अधिक है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#143

जह फणिराओ सोहइ फणमणिमाणिक्ककिकिरणविप्फुरिओ
तह विमलदंसणधरो जिणभत्ती पवयणे जीवो ॥145॥

नागेन्द्र के शुभ सहसफण में शोभता माणिक्य ज्यों ।
अरे समकित शोभता त्यों मोक्ष के मारग विषैं ॥१४५॥

जैसे फणिराज (धरणेन्द्र) है सो फण जो सहस्र फण उनमें लगे हुए मणियों के बीच के लाल-माणिक्य उनकी किरणों से विस्फुरित (दैदीप्यमान) शोभा पाता है, वैसे ही जिनभक्ति-सहित निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक जीव इससे प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#144

जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले।
भाविय तववयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥146॥

चन्द्र तारागण सहित ही लसे नभ में जिसतरह ।
व्रत तप तथा दर्शन सहित जिनलिंग शोभे उसतरह ॥१४६॥

जैसे निर्मल आकाशमंडल में ताराओं के समूहसहित चन्द्रमा का बिंब शोभा पाता है, वैसे ही जिनशासन में दर्शन से विशुद्ध और भावित किये हुए तप तथा व्रतों में निर्मल जिनलिंग है सो शोभा पाता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#145

इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ।।147।।

इमि जानकर गुण-दोष मुक्ति महल की सीढ़ी प्रथम ।
गुण रतन में सार समकित रतन को धारण करो ।।१४७।।

हे मुने! तू 'इति' अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण मिथ्यात्व के दोषों को जानकर सम्यक्त्वरूपी रत्न को भावपूर्वक धारण कर। वह गुणरूपी रत्नों में सार है और मोक्षरूपी मंदिर का प्रथम सोपान है अर्थात् चढ़ने के लिए पहिली सीढ़ी है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#146

कत्ता भोइ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य।
दंसणणाणुवओगो णिद्दिट्ठो जिणवरिन्देहिं ।।148।।

देहमित अर कर्त्ता-भोक्ता जीव दर्शन-ज्ञानमय ।
अनादि अनिधन अमूर्तिक कहा जिनवर देव ने ।।१४८।।

जीव नामक पदार्थ है, सो कैसा है - कर्त्ता है, भोक्ता है, अमूर्तिक है, शरीरप्रमाण है, अनादिनिधन है, दर्शन-ज्ञान-उपयोगवाला है, इस प्रकार जिनवरेन्द्र सर्वज्ञदेव वीतराग ने कहा है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#147

“

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो ।।।५१।।

जिन भावना से सहित भवि दर्शनावरण-ज्ञानावरण ।
अर मोहनी अन्तराय का जड़ मूल से मर्दन करें ।।१४९।।

सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव हैं वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, इन चार घातिया कर्मों का निष्ठापन करता है अर्थात् सम्पूर्ण अभाव करता है।

”

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#148

बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पायडा गुणा होंति।
णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ।।150।।

हो घातियों का नाश दर्शन-ज्ञान-सुख-बल अनंते ।
हो प्रगट आतम माहिं लोकालोक आलोकित करें ।।१५०।।

पूर्वोक्त चार घातिया कर्मों का नाश होने पर अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और बल (वीर्य) ये चार गुण प्रगट होते हैं। जब जीव के ये गुण की पूर्ण निर्मल दशा प्रकट होती है तब लोकालोक को प्रकाशित करता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#149

णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हु चउमुहो बुद्धो।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं ॥151॥

यह आत्मा परमात्मा शिव विष्णु ब्रह्मा बुद्ध है ।
ज्ञानि है परमेष्ठि है सर्वज्ञ कर्म विमुक्त है ॥१५१॥

परमात्मा ज्ञानी है, शिव है, परमेष्ठी है, सर्वज्ञ है, विष्णु है, चतुर्मुख ब्रह्मा है, बुद्ध है, आत्मा है, परमात्मा है और कर्मरहित है, यह स्पष्ट जानो।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#150

इय घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवज्जिओ सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो देउ ममं उत्तमं बोहिं ।।152।।

घन-घाति कर्म विमुक्त अर त्रिभुवनसदन संदीप जो ।
अर दोष अष्टादश रहित वे देव उत्तम बोधि दें ।।१५२।।

इस प्रकार घातिया कर्मों से रहित, क्षुधा, तृषा आदि पूर्वोक्त अठारह दोषों से रहित, सकल (शरीरसहित) और तीन भुवनरूपी भवन को प्रकाशित करने के लिए प्रकृष्ट दीपक तुल्य देव हैं, वह मुझे उत्तम बोधि (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) की प्राप्ति देवे, इस प्रकार आचार्य ने प्रार्थना की है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#151

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण ॥153॥

जिनवर चरण में नमें जो नर परम भक्तिभाव से ।
वर भाव से वे उखाड़े भवबेलि को जड़मूल से ॥१६३॥

जो पुरुष परम भक्ति अनुराग से जिनवर के चरणकमलों को नमस्कार करते हैं वे श्रेष्ठ भावरूप 'शस्त्र' से जन्म अर्थात् संसाररूपी बेल के मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म, उनको नष्ट कर डालते हैं (खोद डालते हैं)।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#152

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ।।154।।

जल में रहें पर कमल पत्ते लिप्त होते हैं नहीं ।
सत्पुरुष विषय-कषाय में त्यों लिप्त होते हैं नहीं ।।१५४।।

जैसे कमलिनी का पत्र अपने स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष है, वह अपने भाव से ही क्रोधादिक कषाय और इन्द्रियों के विषयों से लिप्त नहीं होता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#153

ते च्चिय भणामि हं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं।
बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो ॥155॥

सब शील संयम गुण सहित जो उन्हें हम मुनिवर कहें ।
बहु दोष के आवास जो हैं अरे श्रावक सम न वे ॥१५५॥

पूर्वोक्त भावसहित सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं और शील संयम गुणों से सकल कला अर्थात् संपूर्ण कलावान होते हैं, उन ही को हम मुनि कहते हैं। जो सम्यग्दृष्टि नहीं हैं, मलिनचित्तसहित मिथ्यादृष्टि हैं और बहुत दोषों का आवास (स्थान) है वह तो भेष धारण करता है तो भी श्रावक के समान भी नहीं है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#154

ते धीरवीरपुरिसा खमदखग्गेण विप्फुरंतेण
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं ।।156।।

जीते जिन्होंने प्रबल दुर्द्धर अर अजेय कषाय भट ।
रे क्षमादम तलवार से वे धीर हैं वे वीर हैं ।।१५६।।

जिन पुरुषों ने क्षमा और इन्द्रियों का दमन वह ही हुआ विस्फुरता अर्थात् सजाया हुआ मलिनतारहित उज्जवल खड्ग, उससे जिनको जीतना कठिन है ऐसे दुर्जय, प्रबल तथा बल से उद्धत कषायरूप सुभटों को जीते, वे ही धीरवीर सुभट हैं, अन्य संग्रामादिक में जीतने वाले तो 'कहने के सुभट' हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#155

धण्णा ते भयवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं।
विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं ।।157।।

विषय सागर में पड़े भवि ज्ञान-दर्शन करों से ।
जिनने उतारे पार जग में धन्य हैं भगवंत वे ।।१५७।।

जिन सत्पुरुषों ने विषयरूप मकरधर (समुद्र) में पड़े हुए भव्यजीवों को - दर्शन और ज्ञानरूपी मुख्य दोनों हाथों से-पार उतार दिये, वे मुनिप्रधान भगवान् इन्द्रादिक से पूज्य ज्ञानी धन्य हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#156

मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं ।।158।।

पुष्पित विषयमय पुष्पों से अर मोहवृक्षारूढ़ जो ।
अशेष माया बेलि को मुनि ज्ञानकरवत काटते ।।१५८।।

माया (कपट) रूपी बेल जो मोहरूपी वृक्ष पर चढ़ी हुई है तथा विषयरूपी विष के फूलों से फूल रही है उसको मुनि ज्ञानरूपी शस्त्र से समस्ततया काट डालते हैं अर्थात् निःशेष कर देते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#157

मोहमयगारवेहिं य मुक्का ये करुणभावसंजुत्ता।
ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण ॥159॥

मोहमद गौरवरहित करुणासहित मुनिराज जो ।
अरे पापस्तंभ को चारित खड्ग से काटते ॥१६१॥

जो मुनि मोह-मद-गौरव से रहित हैं और करुणाभाव सहित हैं, वे ही चारित्ररूपी खड्ग से पापरूपी स्तंभ को हनते हैं अर्थात् मूल से काट डालते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो।
तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइंदुव्व पवणपहे ॥160॥

सद्गुणों की मणिमाल जिनमत गगन में मुनि निशाकर ।
तारावली परिवेष्ठित हैं शोभते पूर्णेन्दु सम ॥१६०॥

जैसे पवनपथ (आकाश) में ताराओं की पंक्ति के परिवार से वेष्टित पूर्णिमा का चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही जिनमत रूप आकाश में गुणों के समूहरूपी मणियों की माला से मुनीन्द्ररूप चंद्रमा शोभा पाता है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#159

चक्कहररामकेसवसुरवरजिणगणहराइसोक्खाइं।
चारणमुणिरिद्धीओ विसुद्धभावा णरा पत्ता ।।161।।

चक्रधर बलराम केशव इन्द्र जिनवर गणपति ।
अर ऋद्धियों को पा चुके जिनके हैं भाव विशुद्धवर ।।१६१।।

विशुद्ध भाव वाले ऐसे नर मुनि हैं वह चक्रधर (चक्रवर्ती, छह खंड का राजेन्द्र) राम (बलभद्र) केशव (नारायण, अर्द्धचक्री) सुरवर (देवों का इन्द्र) जिन (तीर्थंकर पंचकल्याणक सहित, तीन-लोक से पूज्य पद) गणधर (चार ज्ञान और सप्तऋद्धि के धारक मुनि) इनके सुखों को तथा चारणमुनि (जिनके आकाशगामिनी आदि ऋद्धियाँ पाई जाती हैं) की ऋद्धियों को प्राप्त हुए।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#160

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं।
पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया-जीवा ।।162।।

जो अमर अनुपम अतुल शिव अर परम उत्तम विमल है ।
पा चुके ऐसा मुक्ति सुख जिनभावना भा नेक नर ।।१६२।।

जिन-भावना को भाने वाला जीव मोक्ष को वर कर सुख को प्राप्त करता है जो 'शिव' (कल्याणरूप), वृद्ध होना और मरना इन दोनों चिन्हों से रहित, अनुपम, सर्वोत्तम, सर्वोत्कृष्ट विमल, अतुलनीय है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#161

ते मे तिहुवणमहिमा सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा।
दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य ।।163।।

जो निरंजन हैं नित्य हैं त्रैलोक्य महिमावंत हैं ।
वे सिद्ध दर्शन-ज्ञान अर चारित्र शुद्धि दें हमें ।।१६३।।

सिद्ध भगवान मुझे दर्शन, ज्ञान में और चारित्र में श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता देवें। कैसे हैं सिद्ध भगवान्? तीन भुवन से पूज्य हैं, शुद्ध हैं, अर्थात् द्रव्य-कर्म और नोकर्मरूप मल से रहित हैं, निरंजन हैं अर्थात् रागादि कर्म से रहित हैं, जिनके कर्म की उत्पत्ति नहीं है, नित्य हैं - प्राप्त स्वभाव का फिर नाश नहीं है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#162

किं जंपिएण बहुणा अत्थो धम्मो यकाममोक्खो य।
अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिट्ठिया सव्वे ॥164॥

इससे अधिक क्या कहें हम धर्मार्थकाम रु मोक्ष में ।
या अन्य सब ही कार्य में है भाव की ही मुख्यता ॥१६४॥

आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और अन्य जो कुछ व्यापार है वह सब ही शुद्धभाव में समस्तरूप से स्थित है।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#163

इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ॥165॥

इस तरह यह सर्वज्ञ भासित भावपाहुड जानिये ।
भाव से जो पढ़ें अविचल थान को वे पायेंगे ॥१६५॥

इस प्रकार इस भावपाहुड का सर्वबुद्ध-सर्वज्ञदेव ने उपदेश दिया है, इसको जो भव्यजीव सम्यक्प्रकार पढ़ते हैं, सुनते हैं और इसका चिन्तन करते हैं वे शाश्वत सुख के स्थान मोक्ष को पाते हैं।

भाव पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

भाव पाहुड जी

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

“

ॐ नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

मोक्ष पाहुड जी

”

#1

“

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स ॥१॥

परद्रव्य को परित्याग पाया ज्ञानमय निज आतमा ।
शत बार उनको हो नमन निष्कर्म जो परमातमा ॥१॥

जिनने परद्रव्य को छोड़कर, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म खिर गये हैं ऐसे होकर, निर्मल ज्ञानमयी आत्मा को प्राप्त कर लिया है इस प्रकार के देव को हमारा नमस्कार हो-नमस्कार हो।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं ॥2॥

परमपदथित शुध अपरिमित ज्ञान-दर्शनमय प्रभु ।
को नमन कर हे योगिजन ! परमात्म का वर्णन करुँ ॥२॥

जिनके अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन पाया जाता है, विशुद्ध है / कर्म-मल से रहित है, जिनका पद परम-उत्कृष्ट है, उन देव को नमस्कार कर, परमात्मा (उत्कृष्ट शुद्धात्मा) को, परम योगीश्वर जो उत्कृष्ट-योग्य ध्यान के करने वाले मुनिराजों के लिये कहूँगा ।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#3

“

जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं।
अव्वाबाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं ॥3॥

योगस्थ योगीजन अनवरत अरे ! जिसको जान कर ।
अनंत अव्याबाध अनुपम मोक्ष की प्राप्ति करें ॥३॥

उसे (परमात्मा को) जानकर योगी (मुनि) योग (ध्यान) में स्थित होकर निरन्तर उस परमात्मा को अनुभवगोचर करके अव्याबाध (जहाँ किसी प्रकार की बाधा नहीं है) अनंत (जिसका नाश नहीं है) अनुपम (जिसको किसी की उपमा नहीं लगती है) निर्वाण को प्राप्त होता है।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#4

"

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चयहि बहिरप्पा ॥५॥

त्रिविध आतमराम में बहिरातमापन त्यागकर ।
अन्तरात्म के आधार से परमात्मा का ध्यान धर ॥४॥

देह में स्फुट वह आत्मा तीन प्रकार का है : अंतरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा, वहां अंतरात्मा के उपाय द्वारा बहिरात्मपन को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो ॥5॥

ये इन्द्रियाँ बहिरात्मा अनुभूति अन्तर आतमा ।
जो कर्ममल से रहित हैं वे देव हैं परमातमा ॥5॥

अक्ष (स्पर्शन आदि इन्द्रियों में लीन उपयोग) वह तो बहिरात्मा है, स्पष्ट-प्रकट आत्मा का अनुभवगोचर संकल्प अंतरात्मा है तथा कर्म-मल से रहित परमात्मा है, वही देव है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो सिवकरो सासओ सिद्धो ॥6॥

है परमजिन परमेष्ठी है शिवंकर जिन शाश्वता ।
केवल अनिन्द्रिय सिद्ध है कल-मलरहित शुद्धातमा ॥६॥

मल-रहित (द्रव्य-कर्म, भाव-कर्मरूप मल से रहित), शरीर-रहित, इन्द्रिय-रहित / अनिंदित, असहाय / केवलज्ञानमयी, विशुद्धात्मा, परम-पद (मोक्ष-पद) में स्थित, सब कर्मों को जीतने वाले, भव्य-जीवों को परम मंगल तथा मोक्ष का कारण, अविनाशी, सिद्ध है (परमात्मा ऐसा है)।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

आरुहवि अन्तरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥7॥

जिनदेव का उपदेश यह बहिरातमापन त्यागकर ।
अरे ! अन्तर आतमा परमात्मा का ध्यान धर ॥७॥

अन्तरात्मा का आश्रय लेकर बहिरात्मपन को मन वचन काय से छोड़कर परमात्मा का ध्यान करो, ऐसा जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेव ने उपदेश दिया है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#8

बहिरत्थे फुरियमणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ ॥8॥

निजरूप से च्युत बाह्य में स्फुरितबुद्धि जीव यह ।
देहादि में अपनत्व कर बहिरात्मपन धारण करे ॥८॥

बाह्य पदार्थ (धन, धान्य, कुटुम्ब आदि) स्फुरित (तत्पर) मनवाला, इन्द्रियों के द्वार से अपने स्वरूप से च्युत, अपने देह को ही आत्मा जानता है / निश्चय करता है, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९

णियदेहसरिच्छं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहिय झाइज्जइ परमभावेण ॥९॥

निज देहसम परदेह को भी जीव जानें मूढ़जन ।
उन्हें चेतन जान सेवें यद्यपि वे अचेतन ॥९॥

मिथ्यादृष्टि पुरुष अपनी देह के समान दूसरे की देह को देखकर के यह देह अचेतन है तो भी मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा बड़ा यत्न करके पर की आत्मा ध्याता है अर्थात् समझता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#10

सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो ॥10॥

निजदेह को निज-आतमा परदेह को पर-आतमा ।
ही जानकर ये मूढ़ सुत-दारादि में मोहित रहें ॥१०॥

इस प्रकार देह में स्व-पर के अध्यवसाय (मिथ्या-निश्चय) के द्वारा जिनने पदार्थ (आत्मा) का स्वरूप नहीं जाना है ऐसे मनुष्यों के पुत्र, स्त्री आदि विषयों में मोह प्रवर्तता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#11

"

मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि अंगं सं मण्णए मणुओ ॥११॥

कुज्ञान में रत और मिथ्याभाव से भावित श्रमण ।
मद-मोह से आच्छन्न भव-भव देह को ही चाहते ॥११॥

यह मनुष्य मोहकर्म के उदय से (उदय के वश होकर) मिथ्याज्ञान के द्वारा मिथ्याभाव से भाया हुआ फिर आगामी जन्म में इस अंग (देह) को अच्छा समझकर चाहता है।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदासहावे सुरतो जोई सो लहइ णिव्वाणं ||12||

जो देह से निरपेक्ष निर्म निरारंभी योगिजन ।
निर्द्वन्द रत निजभाव में वे ही श्रमण मुक्ति वरें ||१२||

जो योगी ध्यानी मुनि, देह में निरपेक्ष है अर्थात् देह को नहीं चाहता है उदासीन है, निर्द्वन्द है - रागद्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मान्यता से रहित है, निर्ममत्व है देहादिक में 'यह मेरा' ऐसी बुद्धि से रहित है, निरारंभ है इस शरीर के लिए तथा अन्य लौकिक प्रयोजन के लिए आरंभ से रहित है और आत्मस्वभाव में रत है, लीन है, निरंतर स्वभाव की भावना सहित है, वह मुनि निर्वाण को प्राप्त करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#13

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स ॥13॥

परद्रव्य में रत बंधें और विरक्त शिवरमणी वरें ।
जिनदेव का उपदेश बंध-अबंध का संक्षेप में ॥१३॥

जो जीव परद्रव्य में रत है, रागी है वह तो अनेक प्रकार के कर्मों से बंधता है, कर्मों का बंध करता है और जो परद्रव्य से विरत है- रागी नहीं है, वह अनेक प्रकार के कर्मों से छूटता है, यह बन्ध का और मोक्ष का संक्षेप में जिनदेव का उपदेश है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#14

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं ।।14।।

नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यकवंत हैं ।
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ।।१४।।

जो मुनि स्वद्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा में रत हैं, रुचि सहित हैं, वह नियम से सम्यग्दृष्टि है और वह ही सम्यक्त्व भावरूप परिणमन करता हुआ दुष्ट आठ कर्मों का क्षय-नाश करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

"

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो पुण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं ॥15॥

किन्तु जो परद्रव्य रत वे श्रमण मिथ्यादृष्टि हैं ।
मिथ्यात्व परिणत वे श्रमण दुष्टाष्ट कर्मों से बंधें ॥१५॥

पुनः जो पर-द्रव्य में लीन है, वह साधु मिथ्यादृष्टि होता है और वह मिथ्यात्व-भावरूप परिणमन करता हुआ दुष्ट अष्ट कर्मों से फिर से बँधता है।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्मि ॥16॥

परद्रव्य से हो दुर्गति निजद्रव्य से होती सुगति ।
यह जानकर रति करो निज में अर करो पर से विरति ॥१६॥

परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है - यह स्पष्ट जानो, इसलिए हे भव्यजीवों ! तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति करो और अन्य जो परद्रव्य उनसे विरति करो।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरिसीहिं ॥17॥

जो आतमा से भिन्न चित्ताचित्त एवं मिश्र हैं ।
उन सर्व-द्रव्यों को अरे ! पर-द्रव्य जिनवर ने कहा ॥१७॥

आत्मस्वभाव से अन्य सचित्त जो स्त्री, पुत्रादिक, जीवसहित वस्तु तथा अचित्त, धन, धान्य, हिरण्य सुवर्णादिक अचेतन वस्तु और मिश्र आभूषणादि सहित मनुष्य तथा कुटुम्ब सहित गृहादिक ये सब परद्रव्य हैं, इसप्रकार जिसने जीवादिक पदार्थों का स्वरूप नहीं जाना उसको समझाने के लिए सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवान ने कहा है अथवा 'अवितत्थं' अर्थात् सत्यार्थ कहा है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#18

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणां हवदि सद्दव्वं ॥१८॥

दुष्टाष्ट कर्मों से रहित जो ज्ञानविग्रह शुद्ध है ।
वह नित्य अनुपम आतमा स्वद्रव्य जिनवर ने कहा ॥१८॥

संसार के दुःख देने वाले ज्ञानावरणादिक दुष्ट अष्टकर्मों से रहित और जिसको किसी की उपमा नहीं ऐसा अनुपम, जिसका ज्ञान ही शरीर है और जिसका नाश नहीं है ऐसा अविनाशी नित्य है और शुद्ध अर्थात् विकार रहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिन भगवान् सर्वज्ञ ने कहा है वह ही स्वद्रव्य है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#19

"

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता।
जे जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहहिं णिव्वाणं ॥१९॥

पर द्रव्य से हो परान्मुख निज द्रव्य को जो ध्यावते ।
जिनमार्ग में संलग्न वे निर्वाणपद को प्राप्त हों ॥१९॥

जो मुनि परद्रव्य से पराङ्मुख होकर स्वद्रव्य जो निज आत्मद्रव्य का ध्यान करते हैं वे प्रगट सुचरित्रा अर्थात् निर्दोष चारित्रयुक्त होते हुए जिन तीर्थंकरों के मार्ग का अनुलग्न (अनुसंधान, अनुसरण) करते हुए निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

जिणवरमएण जोई झाणे झाएइ सुद्धमप्पाणं
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ॥20॥

शुद्धात्मा को ध्यावते जो योगि जिनवरमत विषैं।
निर्वाणपद को प्राप्त हों तब क्यों न पावें स्वर्ग वे ॥२०॥

जो योगी जिनेन्द्र-भगवान के मत से शुद्ध आत्मा को ध्यान में ध्याता है उससे निर्वाण को प्राप्त करता है, तो वे क्या स्वर्ग-लोक नहीं प्राप्त कर सकते हैं?

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#21

"

जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेवि गुरुभारं।
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाउ भुवणयले ॥21॥

गुरु भार लेकर एक दिन में जाँय जो योजन शतक ।
जावे न क्यों क्रोशार्द्ध में इस भुवनतल में लोक में ॥२१॥

जो (पुरुष) बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चला जावे तब क्या वह पृथ्वी-तल पर आधा कोश भी नहीं चल सकता ?

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो ॥22॥

जो अकेला जीत ले जब कोटिभट संग्राम में ।
तब एक जन को क्यों न जीते वह सुभट संग्राम में ॥२२॥

जो कोई सुभट संग्राम में सब ही संग्राम के करने वालों के साथ करोड़ मनुष्यों को भी सुगमता से जीते वह सुभट एक मनुष्य को क्या न जीते ? अवश्य ही जीते।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#23

सग्गं तवेण सव्वो वि पावए तहिं वि ज्ञाणजोएण।
जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं ॥23॥

शुभभाव-तप से स्वर्ग-सुख सब प्राप्त करते लोक में ।
पाया सो पाया सहजसुख निजध्यान से परलोक में ॥२३॥

शुभरागरूपी तप द्वारा स्वर्ग तो सब ही पाते हैं तथापि जो ध्यान के योग से स्वर्ग पाते हैं, वे ही ध्यान के योग से परलोक में शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#24

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥24॥

ज्यों शोधने से शुद्ध होता स्वर्ण बस इसतरह ही ।
हो आतमा परमातमा कालादि लब्धि प्राप्त कर ॥२४॥

जैसे सुवर्ण पाषाण सोधने की सामग्री के संबंध से शुद्ध स्वर्ण हो जाता है, वैसे ही काल आदि लब्धि जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप सामग्री की प्राप्ति से यह आत्मा कर्म के संयोग से अशुद्ध है वही परमात्मा हो जाता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#25

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ॥25॥

ज्यों धूप से छाया में रहना श्रेष्ठ है बस उसतरह ।
अव्रतों से नरक व्रत से स्वर्ग पाना श्रेष्ठ है ॥२५॥

व्रत और तप से स्वर्ग होता है वह श्रेष्ठ है, परन्तु अव्रत और अतप से प्राणी को नरक गति में दुःख होता है वह मत होवे, श्रेष्ठ नहीं है। छाया और आतप में बैठने वाले के प्रतिपालक कारणों में बड़ा भेद है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#26

जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं ॥26॥

जो भव्यजन संसार-सागर पार होना चाहते ।
वे कर्म ईंधन-दहन निज शुद्धात्मा को ध्यावते ॥२६॥

जो जीव रुद्र अर्थात् बड़े विस्तार रूप संसाररूपी समुद्र उससे निकलना चाहता है वह जीव कर्मरूपी ईंधन को दहन करने वाले शुद्ध आत्मा के ध्यान को करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#27

सव्वे कसाय मोत्तुं गारवमयरायदोसवामोहं।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएह झाणत्थो ॥27॥

अरे मुनिजन मान-मद आदिक कषायें छोड़कर ।
लोक के व्यवहार से हों विरत ध्याते आतमा ॥२७॥

मुनि सब कषायों को छोड़कर तथा गारव, मद, राग, द्वेष तथा मोह इनको छोड़कर और लोक व्यवहार से विरक्त होकर ध्यान में स्थित हुआ आत्मा का ध्यान करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#28

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा ॥28॥

मिथ्यात्व एवं पाप-पुन अज्ञान तज मन-वचन से ।
अर मौन रह योगस्थ योगी आतमा को ध्यावते ॥२८॥

योगी ध्यानी मुनि है, वह मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप-पुण्य इनको मन-वचन-काय से छोड़कर मौनव्रत के द्वारा ध्यान में स्थित होकर आत्मा का ध्यान करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#29

"

जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णेव तम्हा जंपेमि केण हं ।।29।।

दिखाई दे जो मुझे वह रूप कुछ जाने नहीं ।
मैं करूँ किससे बात मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ ।।२९।।

जिस रूप को मैं देखता हूँ वह रूप मूर्तिक वस्तु है, जड़ है, अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है और मैं ज्ञायक हूँ, अमूर्तिक हूँ। यह तो जड़ अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है, इसलिए मैं किससे बोलूं ?

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#30

सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवदि संचिदं।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं ॥30॥

सर्वास्रवों के रोध से संचित करम खप जाय सब ।
जिनदेव के इस कथन को योगस्थ योगी जानते ॥३०॥

योग ध्यान में स्थित होता हुआ योगी मुनि सब कर्मों के आस्रव का निरोध करके संवरयुक्त होकर पहिले के बाँधे हुए कर्म जो संचयरूप हैं, उनका क्षय करता है इस प्रकार जिनदेव ने कहा है, वह जानो।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#31

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥31॥

जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में ।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ॥३१॥

जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहार में सोता है वह अपने स्वरूप के कार्य में जागता है और जो व्यवहार में जागता है वह अपने आत्मकार्य में सोता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#32

इस जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं ॥32॥

इमि जान जोगी छोड़ सब व्यवहार सर्वप्रकार से ।
जिनवर कथित परमातमा का ध्यान धरते सदा ही ॥३२॥

इस प्रकार पूर्वोक्त कथन को जानकर योगी ध्यानी मुनि है वह सर्व व्यवहार को सब प्रकार से ही छोड़ देता है और परमात्मा का ध्यान करता है जैसे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है वैसे ही परमात्मा का ध्यान करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#33

पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सया कुणह ॥33॥

पंच समिति महाव्रत अर तीन गुप्ति धर यती ।
रत्नत्रय से युक्त होकर ध्यान अर अध्ययन करो ॥३३॥

आचार्य कहते हैं कि जो पाँच महाव्रत युक्त हो गया तथा पाँच समिति व तीन गुप्तियों से युक्त हो गया और सम्यग्दर्शन - ज्ञान चारित्ररूपी रत्नत्रय से संयुक्त हो गया ऐसे बनकर हे मुनिजनों! तुम ध्यान और अध्ययन शास्त्र के अभ्यास को सदा करो।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#34

“

रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो।
आराहणाविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं ॥34॥

आराधना करते हुये को अराधक कहते सभी ।
आराधना का फल सुनो बस एक केवलज्ञान है ॥३४॥

रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की आराधना करते हुए जीव को आराधक जानना और आराधना के विधान का फल केवलज्ञान है।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#35

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य।
सो जिणवरेहिं भणिओ जाण तुमं केवलं णाणं ॥35॥

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी आतमा सिध शुद्ध है ।
यह कहा जिनवरदेव ने तु स्वयं केवलज्ञानमय ॥३५॥

आत्मा को जिनवर सर्वज्ञदेव ने ऐसा कहा है कि सिद्ध है किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है, स्वयंसिद्ध है, शुद्ध है, कर्ममल से रहित है, सर्वज्ञ है सब लोकालोक को जानता है और सर्वदर्शी है सब लोक अलोक को देखता है, इसप्रकार आत्मा है, वह हे मुने ! उसे ही तू केवलज्ञान जान अथवा उस केवलज्ञान को ही आत्मा जान आत्मा में और ज्ञान में कुछ प्रदेशभेद नहीं है, गुण-गुणी भेद है वह गौण है। यह आराधना का फल पहिले केवलज्ञान कहा, वही है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#36

रयणत्तयं पि जोई आराहइ जो हु जिणवरमएण।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो ॥36॥

रतनत्रय जिनवर कथित आराधना जो यति करें ।
वे धरें आतम ध्यान ही संदेह इसमें रंच ना ॥३६॥

जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेव के मत की आज्ञा से रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की निश्चय से आराधना करता है वह प्रगट रूप से आत्मा का ही ध्यान करता है, क्योंकि रत्नत्रय आत्मा का गुण है और गुण गुणी में भेद नहीं है। रत्नत्रय की आराधना है वह आत्मा की ही आराधना है, वह ही परद्रव्य को छोड़ता है, इसमें सन्देह नहीं है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#37

"

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं ॥37॥

जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा ।
पुण्य-पाप का परिहार चारित यही जिनवर ने कहा ॥३७॥

जो जाने वह ज्ञान है, जो देखे वह दर्शन है और जो पुण्य तथा पाप का परिहार है वह चारित्र है, इस प्रकार जानना चाहिए।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#38

तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।
चारित्तं परिहारो परूवियं जिणवरिंदेहिं ॥38॥

तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है ।
जिनदेव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है ॥३८॥

तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है, तत्त्व का ग्रहण सम्यग्ज्ञान है, परिहार चारित्र है, इस प्रकार जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#39

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो, लहेइ णिव्वाणं।
दंसणविहीणपुरिसो ण लहइ तं इच्छियं लाहं ।।39।।

दृग-शुद्ध हैं वे शुद्ध उनको नियम से निर्वाण हो ।
दृग-भ्रष्ट हैं जो पुरुष उनको नहीं इच्छित लाभ हो ।।३९।।

जो पुरुष दर्शन से शुद्ध है वह ही शुद्ध है, क्योंकि जिसका दर्शन शुद्ध है वही निर्वाण को पाता है जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है वह पुरुष ईप्सित लाभ अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#40

“

इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि ॥40॥

उपदेश का यह सार जन्म-जरा-मरण का हरणकर ।
समदृष्टि जो मानें इसे वे श्रमण-श्रावक कहे हैं ॥४०॥

इस प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का उपदेश सार है, जो जरा व मरण को हरने वाला है, इसको जो मानता है, श्रद्धान करता है वह ही सम्यक्त्व कहा है। वह मुनियों को तथा श्रावकों को सभी को कहा है, इसलिए सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान चारित्र को अंगीकार करो।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#41

जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं ॥41॥

यह सर्वदर्शी का कथन कि जीव और अजीव की ।
भिन-भिन्नता को जानना ही एक सम्यग्ज्ञान है ॥४१॥

जो योगी मुनि जीव अजीव पदार्थ के भेद जिनवर के मत से जानता है वह सम्यग्ज्ञान है ऐसा सर्वदर्शी - सबको देखने वाले सर्वज्ञदेव ने कहा है, अतः वह ही सत्यार्थ है, अन्य छद्मस्थ का कहा हुआ सत्यार्थ नहीं है, असत्यार्थ है, सर्वज्ञ का कहा हुआ ही सत्यार्थ है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#42

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं अवियप्पं कम्मरहिएहिं ॥42॥

इमि जान करना त्याग सब ही पुण्य एवं पाप का ।
चारित्र है यह निर्विकल्पक कथन यह जिनदेव का ॥४२॥

योगी ध्यानी मुनि उस पूर्वोक्त जीवाजीव के भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान को जानकर पुण्य तथा पाप इन दोनों का परिहार करता है, त्याग करता है वह चारित्र है, जो निर्विकल्प है अर्थात् प्रवृत्तिरूप क्रिया के विकल्पों से रहित है, वह चारित्र घातिकर्म से रहित ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहा है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#43

“

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं ॥43॥

रतनत्रय से युक्त हो जो तप करे संयम धरे ।
वह ध्यान धर निज आतमा का परमपद को प्राप्त हो ॥४३॥

जो मुनि रत्नत्रय संयुक्त होता हुआ संयमी बनकर अपनी शक्ति के अनुसार तप करता है, वह शुद्ध आत्मा का ध्यान करता हुआ परमपद निर्वाण को प्राप्त करता है।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#44

तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई ॥५५॥

रुष-राग का परिहार कर त्रययोग से त्रयकाल में ।
त्रयशल्य विरहित रतनत्रय धर योगि ध्यावे आत्मा ॥४४॥

त्रिभिः' मन वचन काय से 'त्रीन्' वर्षा, शीत, उष्ण तीन कालयोगों को धारण कर 'त्रिकरहितः ' माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यों से रहित होकर 'त्रिकेण परिकरित' दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मंडित होकर और 'द्विदोषविप्रमुक्तः' दो दोष अर्थात् राग-द्वेष इनसे रहित होता हुआ योगी ध्यानी मुनि है वह परमात्मा अर्थात् सर्वकर्म रहित शुद्ध परमात्मा उनका ध्यान करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#45

मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं ।। ४५ ।।

जो जीव माया-मान-लालच-क्रोध को तज शुद्ध हो ।
निर्मल-स्वभाव धरे वही नर परमसुख को प्राप्त हो ।।४५।।

जो जीव मद, माया, क्रोध इनसे रहित हो और लोभ से विशेषरूप से रहित हो वह जीव निर्मल विशुद्ध स्वभाव युक्त होकर उत्तम सुख को प्राप्त करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#46

विसयकसाएहि जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो ॥46॥

जो रुद्र विषय-कषाय युत जिन भावना से रहित हैं।
जिनलिंग से हैं पराङ्मुख वे सिद्धसुख पावें नहीं ॥४६॥

जो जीव विषय कषायों से युक्त हैं, रौद्रपरिणामी हैं, हिंसादिक विषय कषायादिक पापों में हर्षसहित प्रवृत्ति करता है और जिसका चित्त परमात्मा की भावना से रहित है ऐसा जीव जिनमुद्रा से पराङ्मुख है वह ऐसे सिद्धिसुख जो मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#47

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठं।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ॥47॥

जिनवर कथित जिनलिंग ही है सिद्धसुख यदि स्वप्न में ।
भी ना रुचे तो जान लो भव गहन वन में वे रुलें ॥४७॥

जिन भगवान के द्वारा कही गई जिनमुद्रा से नियम से सिद्धिसुख (मुक्तिसुख) होता है । ऐसी जिनमुद्रा जिस जीव को, स्वप्न में भी नहीं रुचती है (अवज्ञा करता है), तो वह जीव संसाररूप गहन वन में रहता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#48

परमप्पय झायंतो जोई मुच्चेइ मलदलोहेण।
णादियदि णवं कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ।।48।।

परमात्मा के ध्यान से हो नाश लोभ कषाय का ।
नवकर्म का आस्रव रुके यह कथन जिनवरदेव का ।।४८ ।।

जो योगी ध्यानी परमात्मा का ध्यान करता हुआ रहता है वह मल देने वाले लोभ कषाय से छूटता है उसके लोभ मल नहीं लगता है इसी से नवीन कर्म का आस्रव उसके नहीं होता है यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#४१

होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई ॥४१॥

जो योगि सम्यक्दर्शपूर्वक चारित्र दृढ़ धारण करे ।
निज आतमा का ध्यानधर वह मुक्ति की प्राप्ति करे ॥४९॥

पूर्वोक्त प्रकार जिसकी मति दृढ सम्यक्त्व से भावित है ऐसे योगी ध्यानी मुनि दृढ़ चारित्रवान होकर आत्मा का ध्यान करता हुआ परमपद अर्थात् परमात्मपद को प्राप्त करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#50

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ॥50॥

चारित्र ही निजधर्म है अर धर्म आत्मस्वभाव है ।
अनन्य निज परिणाम वह ही राग-द्वेष विहीन है ॥५०॥

स्वधर्म अर्थात् आत्मा का धर्म है वह चरण अर्थात् चारित्र है। धर्म है वह आत्मसमभाव हैं, सब जीवों में समानभाव है। जो अपना धर्म है वही सब जीवों में है अथवा सब जीवों को अपने समान मानना है और जो आत्मस्वभाव से ही (स्वाश्रय के द्वारा) रागद्वेष रहित हैं, किसी से इष्ट- अनिष्ट बुद्धि नहीं है ऐसा चारित्र है वह जैसे जीव के दर्शन ज्ञान है वैसे ही अनन्य परिणाम हैं, जीव का ही भाव है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#51

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अणण्णविहो ॥51॥

फटिकमणिसम जीव शुध पर अन्य के संयोग से ।
वह अन्य-अन्य प्रतीत हो, पर मूलतः है अनन्य ही ॥५१॥

जैसे स्फटिक मणि विशुद्ध है, निर्मल है,उज्वल है वह परद्रव्य जो पीत, हरित पुष्पादिक से युक्त होने पर अन्य सा दीखता है, पीतादिवर्णमयी दीखता है वैसे ही जीव विशुद्ध है स्वच्छ स्वभाव है, परन्तु यह (अनित्य पर्याय में अपनी भूल द्वारा स्व से च्युत होता है तो) रागद्वेषादिक भावों से युक्त होने पर अन्य अन्य प्रकार हुआ दीखता है, यह प्रगट है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#52

देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु अणुरत्तो।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होदि जोई सो ॥52॥

देव-गुरु का भक्त अर अनुरक्त साधक वर्ग में ।
सम्यक्सहित निज ध्यानरत ही योगि हो इस जगत में ॥५२॥

जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्व को धारण करता है किन्तु जब तक यथाख्यात चारित्र को प्राप्त नहीं होता है तब तक देव (अरहंत-सिद्ध), और गुरु (शिक्षा-दीक्षा देनेवाले) में तो भक्ति, साधर्मी तथा संयमी (मुनि) में अनुराग-सहित सम्यक्त्व पूर्वक ध्यान में रत (प्रीतिवान) ऐसा योगी (मुनि) होता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#53

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण ॥53॥

उग्र तप तप अज्ञ भव-भव में न जितने क्षय करें ।
विज्ञ अन्तर्मुहूरत में कर्म उतने क्षय करें ॥५३॥

अज्ञानी तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने कर्मों का ज्ञानी मुनि तीन गुप्ति सहित होकर अन्तर्मुहूर्त में ही क्षय कर देता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#54

सुहजोएण सुभावं परदव्वे कुणइ रागदो साहू।
सो तेण दु अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीओ ॥54॥

परद्रव्य में जो साधु करते राग शुभ के योग से ।
वे अज्ञ हैं पर विज्ञ राग नहीं करें परद्रव्य में ॥५४॥

शुभ योग अर्थात् अपने इष्ट वस्तु के संबंध से परद्रव्य में सुभाव अर्थात् प्रीतिभाव को करता है वह प्रगट रागद्वेष है, इष्ट में राग हुआ तब अनिष्ट वस्तु में द्वेषभाव होता ही है, इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है वह उस कारण से रागी द्वेषी अज्ञानी है और जो इससे विपरीत अर्थात् उल्टा है, परद्रव्य में रागद्वेष नहीं करता है वह ज्ञानी है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#55

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीदु ॥55॥

निज भाव से विपरीत अर जो आस्रवों के हेतु हैं ।
जो उन्हें मानें मुक्तिमग वे साधु सचमुच अज्ञ हैं ॥५५॥

जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबंध का कारण पहिले कहा वैसे ही राग भाव यदि मोक्ष के - निमित्त भी हो तो आस्रव का ही कारण है, कर्म का बंध ही करता है; इस कारण से जो मोक्ष को परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर वैसे ही रागभाव करता है तो वह जीव मुनि भी अज्ञानी है, क्योंकि वह आत्मस्वभाव से विपरीत है, उसने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#56

जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो।
सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो ॥56॥

अरे जो कर्मजनित वे करें आत्मस्वभाव को ।
खण्डित अतः वे अज्ञजन जिनधर्म के दूषक कहे ॥५६॥

जिसकी बुद्धि कर्म ही में उत्पन्न होती है ऐसा पुरुष स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान उसको खंडरूप दूषण करने वाला है, इन्द्रियज्ञान खंड-खंडरूप है, अपने-अपने विषय को जानता है जो जीव इतना मात्र ही ज्ञान को मानता है, इस कारण से ऐसा माननेवाला अज्ञानी हैं, जिनमत को दूषित करता है। (अपने में महादोष उत्पन्न करता है)।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#57

णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं ॥57॥

चारित रहित है ज्ञान-दर्शन हीन तप संयुक्त है ।
क्रिया भाव विहीन तो मुनिवेष से क्या साध्य है ॥५७॥

जहाँ ज्ञान तो चारित्र रहित है, तपयुक्त भी है, परन्तु वह दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व से रहित है, अन्य भी आवश्यक आदि क्रियायें हैं, परन्तु उनमें भी शुद्ध भाव नहीं है, इस प्रकार लिंग-भेष ग्रहण करने में क्या सुख है ?

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#58

अच्चेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी।
सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा ॥58॥

जो आत्मा को अचेतन हैं मानते अज्ञानि वे ।
पर ज्ञानिजन तो आतमा को एक चेतन मानते ॥५८॥

जो अचेतन में चेतन को मानता है वह अज्ञानी है और जो चेतन में ही चेतन को मानता है, उसे ज्ञानी कहा है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#59

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥59॥

निरर्थक तप ज्ञान विरहित तप रहित जो ज्ञान है ।
यदि ज्ञान तप हों साथ तो निर्वाणपद की प्राप्ति हो ॥५९॥

जो ज्ञान तपरहित है और जो तप है वह भी ज्ञानरहित है तो दोनों ही अकार्य हैं इसलिए ज्ञान तप संयुक्त होने पर ही निर्वाण को प्राप्त करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#60

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि ॥60॥

क्योंकि चारों ज्ञान से भी महामण्डित तीर्थंकर ।
भी तप करें बस इसलिए तप करो सम्यग्ज्ञान युत ॥६०॥

आचार्य कहते हैं कि देखो, जिसको नियम से मोक्ष होना है और जो चार ज्ञान मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इनसे युक्त है ऐसा तीर्थंकर भी तपश्चरण करता है, इसप्रकार निश्चय से जानकर ज्ञानयुक्त होने पर भी तप करना योग्य है (तप - मुनित्व सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता को तप कहा है)

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#61

बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू ॥61॥

स्वानुभव से भ्रष्ट एवं शून्य अन्तरलिंग से ।
बहिर्लिंग जो धारण करें वे मोक्षमग नाशक कहे ॥६१॥

जो जीव बाह्य लिंग-भेष सहित है और अभ्यंतर लिंग जो परद्रव्यों में सर्व रागादिक ममत्वभाव रहित ऐसे आत्मानुभव से रहित है तो वह स्वक चारित्र अर्थात् अपने आत्मस्वरूप के आचरण चारित्र से भ्रष्ट है, परिकर्म अर्थात् बाह्य में नम्रता, ब्रह्मचर्यादि शरीरसंस्कार से परिवर्तनवान द्रव्यलिंगी होने पर भी वह स्वचारित्र से भ्रष्ट होने से मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#62

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए ॥62॥

अनुकूलता में जो सहज प्रतिकूलता में नष्ट हो ।
इसलिये प्रतिकूलता में करो आतम साधना ॥६२॥

सुख से भाया हुआ ज्ञान, दुःख (उपसर्ग-परिषहादि) के द्वारा नष्ट हो जाता है, इसलिये यथा-शक्ति योगी (मुनि) तपश्चरणादि के कष्ट (दुःख) सहित आत्मा को भावे।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#63

आहाराशसणणिद्दाजयं च काऊण जिणवरमएण।
झायव्वो णियअप्पा णाऊणं गुरुपसाएण ॥63॥

आहार निद्रा और आसन जीत ध्याओ आतमा ।
बस यही है जिनदेव का मत यही गुरु की आज्ञा ॥६३॥

आहार, आसन, निद्रा को जीतकर और जिनवर का मत गुरु के प्रसाद से जानकर निज आत्मा का ध्यान करना।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#64

“

अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण ।।64।।

ज्ञान दर्शन चरित मय जो आतमा जिनवर कहा ।
गुरु की कृपा से जानकर नित ध्यान उसका ही करो ।।६४।।

आत्मा चारित्रवान है और दर्शन ज्ञान सहित है ऐसा आत्मा गुरु के प्रसाद से जानकर नित्य ध्यान करना।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#65

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥65॥

आत्मा का जानना भाना व करना अनुभवन ।
तथा विषयों से विरक्ति उत्तरोत्तर है कठिन ॥६५॥

प्रथम तो आत्मा को जानते हैं वह दुःख से जाना जाता है, फिर आत्मा को जानकर भी भावना करना, फिर फिर उसी का अनुभव करना दुःख से (उग्र पुरुषार्थ से) होता है, कदाचित् भावना भी किसी प्रकार हो जावे तो भायी है जिनभावना जिसने ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े दुःख से (अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#66

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥66॥

जबतक विषय में प्रवृत्ति तबतक न आतमज्ञान हो ।
इसलिए आतम जानते योगी विषय विरक्त हों ॥६६॥

तब तक आत्मा को नहीं जानता जब तक मनुष्य (इन्द्रिय) विषयों में प्रवर्त्तता है, इसलिये योगी (मुनि) विषयों से विरक्त-चित्त होता हुआ आत्मा को जानता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#67

अप्पा जाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा।
हिंडंति चाउरंगं विसएसु विमोहिया मूढा ॥67॥

निज आतमा को जानकर भी मूढ़ रमते विषय में ।
हो स्वानुभव से भ्रष्ट भ्रमते चतुर्गति संसार में ॥६७॥

कई मनुष्य आत्मा को जानकर भी अपने स्वभाव की भावना से अत्यंत भ्रष्ट हुए विषयों में मोहित होकर अज्ञानी मूर्ख चार गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#68

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥68॥

अरे विषय विरक्त हो निज आतमा को जानकर ।
जो तपोगुण से युक्त हों वे चतुर्गति से मुक्त हों ॥६८॥

फिर जो पुरुष मुनि विषयों से विरक्त हो आत्मा को जानकर भाते हैं, बारंबार भावना द्वारा अनुभव करते हैं वे तप अर्थात् बारह प्रकार तप और मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त होकर संसार को छोड़ते हैं, मोक्ष पाते हैं।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#69

"

परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ ॥69॥

यदि मोह से पर द्रव्य में रति रहे अणु प्रमाण में ।
विपरीतता के हेतु से वे मूढ़ अज्ञानी रहें ॥६९॥

जिस पुरुष के परद्रव्य में परमाणु प्रमाण भी लेशमात्र मोह से रति अर्थात् राग- प्रीति हो तो वह पुरुष मूढ़ है, अज्ञानी है, आत्मस्वभाव से विपरीत है।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#70

अप्पा झायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं।
होदि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ।।70।।

शुद्ध दर्शन दृढ़ चरित एवं विषय विरक्त नर ।
निर्वाण को पाते सहज निज आतमा का ध्यान धर ।।७०।।

पूर्वोक्त प्रकार जिनका चित्त विषयों से विरक्त है, जो आत्मा का ध्यान करते रहते हैं, जिनके बाह्य अभ्यन्तर दर्शन की शुद्धता है और जिनके दृढ़ चारित्र है उनको निश्चय से निर्वाण होता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#71

जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणं ॥7॥

पर द्रव्य में जो राग वह संसार कारण जानना ।
इसलिये योगी करें नित निज आतमा की भावना ॥७१॥

जिस कारण से परद्रव्य में राग है, वह संसार ही का कारण है उस कारण ही से योगीश्वर मुनि नित्य आत्मा ही में भावना करते हैं।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#72

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ॥72॥

निन्दा-प्रशंसा दुक्ख-सुख अर शत्रु-बंधु-मित्र में ।
अनुकूल अर प्रतिकूल में समभाव ही चारित्र है ॥७२॥

निन्दा प्रशंसा में, दुःख-सुख में और शत्रु-बन्धु मित्र में समभाव जो समता परिणाम, रागद्वेष से रहितपना ऐसे भाव से चारित्र होता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#73

"

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्ठा।
केई जंपंति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स ॥73॥

जिनके नहीं व्रत-समिति चर्या भ्रष्ट हैं शुधभाव से ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान योग नहीं बने ॥७३॥

कई मनुष्य ऐसे हैं जिनके चर्या अर्थात् आचारक्रिया आवृत्त है, चारित्रमोह का उदय प्रबल है, इससे चर्या प्रकट नहीं होती है इसी से व्रतसमिति से रहित हैं और मिथ्या अभिप्राय के कारण शुद्धभाव से अत्यंत भ्रष्ट हैं, वे ऐसे कहते हैं कि अभी पंचमकाल है, यह काल प्रकट ध्यान योग का नहीं है।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#74

सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स ॥74॥

जो शिवविमुख नर भोग में रत ज्ञानदर्शन रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान-योग नहीं बने ॥७४॥

पूर्वोक्त ध्यान का अभाव कहने वाला जीव सम्यक्त्व और ज्ञान से रहित है , अभव्य है इसी से मोक्ष रहित है और संसार के इन्द्रिय सुखों को भले जानकर उनमें रत है, आसक्त है,इसलिए कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालो भणइ झाणस्स ॥75॥

जो मूढ़ अज्ञानी तथा व्रत समिति गुप्ति रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान योग नहीं बने ॥७५॥

जो पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति इनमें मूढ है, अज्ञानी है अर्थात् इनका स्वरूप नहीं जानता है और चारित्रमोह के तीव्र उदय से इनको पाल नहीं सकता है वह इस प्रकार कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#76

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥76॥

भरत-पंचमकाल में निजभाव में थित संत के ।
नित धर्मध्यान रहे न माने जीव जो अज्ञानि वे ॥७६॥

इस भरतक्षेत्र में दुःषमकाल- पंचमकाल में साधु मुनि के धर्मध्यान होता है यह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित है उस मुनि के होता है, जो यह नहीं मानता है वह अज्ञानी है उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#77

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥77॥

रतनत्रय से शुद्ध आतम आतमा का ध्यान धर ।
आज भी हों इन्द्र आदिक प्राप्त करते मुक्ति फिर ॥७७॥

अभी इस पंचमकाल में भी जो मुनि सम्यग्दर्शन- ज्ञान चारित्र की शुद्धता युक्त होते हैं। वे आत्मा का ध्यान कर इन्द्रपद अथवा लौकान्तिक देव पद को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चयकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#78

"

जे पावमोहियमई लिंग घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥78॥

जिन लिंग धर कर पाप करते पाप मोहितमति जो ।
वे च्युत हुए हैं मुक्तिमग से दुर्गति दुर्मति हो ॥७८॥

जिनकी बुद्धि पापकर्म से मोहित हैं वे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर का लिंग ग्रहण करके भी पाप करते हैं वे पापी मोक्षमार्ग से च्युत हैं।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#79

"

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥79॥

हैं परिग्रही अधःकर्मरत आसक्त जो वस्त्रादि में ।
अर याचना जो करें वे सब मुक्तिमग से बाह्य हैं ॥७९॥

पंच आदि प्रकार के चेल अर्थात् वस्त्रों में आसक्त हैं, अंडज, कर्पासिज, वल्कल, चर्मज और रोमज इस प्रकार वस्त्रों में किसी एक वस्त्र को ग्रहण करते हैं, ग्रन्थग्राही अर्थात् परिग्रह के ग्रहण करने वाले हैं, याचनाशील अर्थात् माँगने का ही जिनका स्वभाव है और अधः कर्म अर्थात् पापकर्म में रत हैं, सदोष आहार करते हैं वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#80

"

णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥40॥

रे मुक्त हैं जो जितकषायी पाप के आरंभ से ।
परिषहजयी निर्ग्रंथ वे ही मुक्तिमारग में कहे ॥८०॥

निर्ग्रंथ (परिग्रह-रहित), मोह-रहित, बाईस परीषहों को सहने वाले, कषायों को जिनने जीत लिया और आरंभादिक पापों में नहीं प्रवर्तते उन्हें मोक्षमार्ग में ग्रहण किया है।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#81

उड्ढड्ढमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इय भावणाए जोई पावंति हु सासयं सोक्खं ॥81॥

त्रैलोक में मेरा न कोई मैं अकेला आतमा ।
इस भावना से योगिजन पाते सदा सुख शास्वता ॥८१॥

मुनि ऐसी भावना करे ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक इन तीनों लोकों में मेरा कोई भी नहीं है, मैं एकाकी आत्मा हूँ, ऐसी भावना से योगी मुनि प्रकटरूप से शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥82॥

जो ध्यानरत सुचरित्र एवं देव-गुरु के भक्त हैं ।
संसार-देह विरक्त वे मुनि मुक्तिमारग में कहे ॥८२॥

जो मुनि देव- गुरु के भक्त हैं, निर्वेद अर्थात् संसार देह भोगों से विरागता की परंपरा का चिंतन करते हैं, ध्यान में रत हैं, रक्त हैं, तत्पर हैं और जिनके भला उत्तम चारित्र हैं, उनको मोक्षमार्ग में ग्रहण किये हैं।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#83

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥83॥

निज-द्रव्यरत यह आतमा ही योगि चारित्रवंत है ।
यह ही बने परमातमा परमार्थनय का कथन यह ॥८३॥

आचार्य कहते हैं कि निश्चयनय का ऐसा अभिप्राय है जो आत्मा आत्मा ही में अपने ही लिये भले प्रकार रत हो जावे वह योगी, ध्यानी, मुनि सम्यक्चारित्रवान् होता हुआ निर्वाण को पाता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#84

पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्दंदो ॥84॥

ज्ञानदर्शनमय अवस्थित पुरुष के आकार में ।
ध्याते सदा जो योगि वे ही पापहर निर्द्वन्द हैं ॥८४॥

यह आत्मा ध्यान के योग्य कैसा है ? पुरुषाकार है, योगी है, जिसके मन, वचन, काय के योगों का निरोध है, सर्वांग सुनिश्चल है और वर अर्थात् श्रेष्ठ सम्यकरूप ज्ञान तथा दर्शन से समग्र है, परिपूर्ण है, जिसके केवलज्ञान दर्शन प्राप्त हैं, इस प्रकार आत्मा का जो योगी ध्यानी मुनि ध्यान करता है वह मुनि पाप को हरनेवाला है और निर्द्वन्द है-रागद्वेष आदि विकल्पों से रहित है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#85

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं ।।85।।

जिनवरकथित उपदेश यह तो कहा श्रमणों के लिए ।
अब सुनो सुखसिद्धिकर उपदेश श्रावक के लिए ।।८५।।

एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार उपदेश तो श्रमण मुनियों को जिनदेव ने कहा है। अब श्रावकों को संसार का विनाश करने वाला और सिद्धि जो मोक्ष उसको करने का उत्कृष्ट कारण ऐसा उपदेश कहते हैं सो सुनो।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#86

गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाए ॥86॥

सबसे प्रथम सम्यक्त्व निर्मल सर्व दोषों से रहित ।
कर्मक्षय के लिये श्रावक-श्राविका धारण करें ॥८६॥

प्रथम तो श्रावकों को सुनिर्मल अर्थात भले प्रकार निर्मल और मेरुवत् निःकंप अचल तथा चल मलिन अगाढ़ दूषणरहित अत्यंत निश्चल ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण करके दुःख का क्षय करने के लिए उसको अर्थात् सम्यग्दर्शन को (सम्यग्दर्शन के विषय का) ध्यान में -ध्यान करना।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#87

सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥87॥

अरे सम्यग्दृष्टि है सम्यक्त्व का ध्याता गृही ।
दुष्टाष्ट कर्मों को दहे सम्यक्त्व परिणत जीव ही ॥८७॥

जो श्रावक सम्यक्त्व का ध्यान करता है वह जीव सम्यग्दृष्टि है और सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ दुष्ट आठ कर्मों का क्षय करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#44

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥44॥

मुक्ति गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का ।
यह जान लो हे भव्यजन ! इससे अधिक अब कहें क्या ॥८८॥

आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या साध्य है ? जो नरप्रधान अतीतकाल में सिद्ध हुए हैं और आगामी काल में सिद्ध होंगे वह सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#८१

ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥८१॥

वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं वे शूर नर पण्डित वही ।
दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ॥८१॥

जिन पुरुषों ने मुक्ति को करने वाले सम्यक्त्व को स्वप्नावस्था में भी मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया वे पुरुष धन्य हैं, वे ही मनुष्य हैं, वे ही भले कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं, वे ही पंडित हैं।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#90

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥९०॥

सब दोष विरहित देव अर हिंसारहित जिनधर्म में ।
निर्ग्रन्थ गुरु के वचन में श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥९०॥

हिंसारहित धर्म, अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्ष का मार्ग तथा गुरु इनमें श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९।

जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं ॥९१॥

यथाजातस्वरूप संयत सर्व संग विमुक्त जो ।
पर की अपेक्षा रहित लिंग जो मानते समदृष्टि वे ॥९१॥

मोक्षमार्ग का लिंग-भेष ऐसा है कि यथाजातरूप तो जिसका रूप है, जिसमें बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित् मात्र भी सुसंयत अर्थात् सम्यक् प्रकार इन्द्रियों का निग्रह और जीवों की दया जिसमें पाई जाती है ऐसा संयम है, सर्वसंग अर्थात् सब ही परिग्रह तथा सब लौकिक जनों की संगति से रहित है और जिसमें पर की अपेक्षा कुछ भी नहीं है, मोक्ष के प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजन की अपेक्षा नहीं है। ऐसा मोक्षमार्ग का लिंग माने श्रद्धान करे उस जीव के सम्यक्त्व होता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च बंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु ॥92॥

जो लाज-भय से नमें कुत्सित लिंग कुत्सित देव को ।
और सेवें धर्म कुत्सित जीव मिथ्यादृष्टि वे ॥९२॥

जो क्षुधादिक और रागद्वेषादिक दोषों से दूषित हो वह कुत्सित देव है, जो हिंसादि दोषों से सहित हो वह कुत्सित धर्म है, जो परिग्रहादि सहित हो वह कुत्सितलिंग है। जो इनकी लज्जा, भय, गारव आदि कारणों से वंदना करता है, पूजा करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९३

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्तो ॥९३॥

अरे रागी देवता अर स्वपरपेक्षा लिंगधर ।
व असंयत की वंदना न करें सम्यग्दृष्टिजन ॥९३॥

स्वपरापेक्ष तो लिंग आप कुछ लौकिक प्रयोजन मन में धारण कर भेष ले वह स्वापेक्ष है और किसी पर की अपेक्षा से धारण करे, किसी के आग्रह तथा राजादिक के भय से धारण करे वह परापेक्ष है। रागी देव (जिसके स्त्री आदि का राग पाया जाता है) और संयमरहित को इस प्रकार कहे कि मैं वंदना करता हूँ तथा इनको माने, श्रद्धान करे वह मिथ्यादृष्टि है। शुद्ध सम्यक्त्व होने पर न इनको मानता है, न श्रद्धान करता है और न वंदना व पूजन ही करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९५

सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥९५॥

जिनदेव देशित धर्म की श्रद्धा करें सद्दृष्टिजन ।
विपरीतता धारण करें बस सभी मिथ्यादृष्टिजन ॥९४॥

जो जिनदेव से उपदेशित धर्म का पालन करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है और जो अन्यमत के उपदेशित धर्म का पालन करता है उसे मिथ्यादृष्टि जानना।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९५

मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउले जीवो ॥९५॥

अरे मिथ्यादृष्टिजन इस सुखरहित संसार में ।
प्रचुर जन्म-जरा-मरण के दुख हजारों भोगते ॥९५॥

जो मिथ्यादृष्टि जीव है वह जन्म जरा मरण से प्रचुर और हजारों दुःखों से व्याप्त इस संसार में सुखरहित दुखी होकर भ्रमण करता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९६

सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएणं तु ॥९६॥

जानकर सम्यक्त्व के गुण-दोष मिथ्याभाव के ।
जो रुचे वह ही करो अधिक प्रलाप से है लाभ क्या ॥९६॥

हे भव्य ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण और मिथ्यात्वभाव के दोषों की अपने मन से भावना कर और जो अपने मन को रुचे, प्रिय लगे वह कर बहुत प्रलापरूप कहने से क्या साध्य है ? इस प्रकार आचार्य ने उपदेश दिया है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९७

“

बाहिरसंगविमुक्को ण वि मुक्को मिच्छभाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं ॥९७॥

छोड़ा परिग्रह बाह्य मिथ्याभाव को नहिं छोड़ते ।
वे मौन ध्यान धरें परन्तु आतमा नहीं जानते ॥९७॥

जो बाह्य परिग्रह रहित और मिथ्याभाव सहित निर्ग्रन्थ भेष धारण किया है वह परिग्रह रहित नहीं है, उसके ठाण अर्थात् खड़े होकर कायोत्सर्ग करने से क्या साध्य है ? और मौन धारण करने से क्या साध्य है ? क्योंकि आत्मा का समभाव जो वीतराग परिणाम उसको नहीं जानता है।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९४

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियद ॥९४॥

मूलगुण उच्छेद बाह्य क्रिया करें जो साधुजन ।
हैं विराधक जिनलिंग के वे मुक्ति-सुख पाते नहीं ॥९८॥

जो मुनि निर्ग्रन्थ होकर मूलगुण धारण करता है उनका छेदनकर, बिगाड़कर केवल बाह्य क्रिया कर्म करता है वह सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसा मुनि निश्चय से जिनलिंग का विराधक है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु।
किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो ॥९९॥

आत्मज्ञान बिना विविध-विध विविध क्रिया-कलाप सब ।
और जप-तप पद्म-आसन क्या करेंगे आत्महित ॥९९॥

आत्मस्वभाव से विपरीत, प्रतिकूल बाह्यकर्म में जो क्रियाकांड वह क्या करेगा ? - कुछ मोक्ष का कार्य तो किंचिन्मात्र भी नहीं करेगा, बहुत अनेक प्रकार क्षमण अर्थात् उपवासादि बाह्य तप भी क्या करेगा ? कुछ भी नहीं करेगा, आतापनयोग आदि कायक्लेश क्या करेगा ? कुछ भी नहीं करेगा।

”

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#100

जदि पढदि बहु सुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं च चारित्तं।
तं बालसुदं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं ।।100।।

यदि पढ़े बहुश्रुत और विविध क्रिया-कलाप करे बहुत ।
पर आत्मा के भान बिन बालाचरण अर बालश्रुत ।।१००।।

जो आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रों को पढ़ेगा और बहुत प्रकार के चारित्र का आचरण करेगा तो वह सब ही बालश्रुत और बालचारित्र होगा। आत्मस्वभाव से विपरीत शास्त्र का पढ़ना और चारित्र का आचरण करना ये सब ही बालश्रुत व बालचारित्र हैं, अज्ञानी की क्रिया है, क्योंकि ग्यारह अंग और नव पूर्व तक तो अभव्य जीव भी पढ़ता है और बाह्य मूलगुणरूप चारित्र भी पालता है तो भी मोक्ष के योग्य नहीं है, इसप्रकार जानना चाहिए।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#101

वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो ।।101।।
गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिदो साहू।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ।।102।।

निजसुख निरत भवसुख विरत परद्रव्य से जो परान्मुख ।
वैराग्य तत्पर गुणविभूषित ध्यान धर अध्ययन सुरत ।।१०१।।
आदेय क्या है हेय क्या - यह जानते जो साधुगण ।
वे प्राप्त करते थान उत्तम जो अनन्तानन्दमय ।।१०२।।

वैराग्य में तत्पर और पर-द्रव्य से पराङ्मुख होता है वह साधु संसार-सुख से विरक्त हो,अपने आत्मीक शुद्ध (कषायों के क्षोभ से रहित) सुख में अनुरक्त (लीन) होता है । जो साधु मूलगुण, उत्तरगुणों से आत्मा को अलंकृत / शोभायमान किये हो, हेय-उपादेय तत्त्व का निश्चय हो,ध्यान और अध्ययन में भली प्रकार लीन वह उत्तम-स्थान (मोक्ष) पाता है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#102

णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह ॥103॥

जिनको नमे थुति करे जिनकी ध्यान जिनका जग करे ।
वे नमें ध्यावें थुति करें तू उसे ही पहिचान ले ॥१०३॥

हे भव्यजीवो! तुम इस देह में स्थित ऐसा कुछ क्यों है, क्या है, उसे जानो, वह लोक में नमस्कार करने योग्य इन्द्रादि हैं, उनसे तो नमस्कार करने योग्य, ध्यान करने योग्य है और स्तुति करने योग्य जो तीर्थंकरादि हैं उनसे भी स्तुति करने योग्य है, ऐसा कुछ है वह इस देह ही में स्थित है उसको यथार्थ जानो।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#103

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ।।।104।।

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण ।
सब आतमा की अवस्थायें आत्मा ही है शरण ।।१०४।।

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हैं ये भी आत्मा में चेष्टारूप हैं, आत्मा की अवस्था हैं इसलिए मेरे आत्मा का ही शरण है, इस प्रकार आचार्य ने अभेदनय प्रधान करके कहा है।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#104

"

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तव चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ।।105।।

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण ।
सब आतमा की अवस्थायें आत्मा ही है शरण ।।१०५।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप ये चार आराधना है ये भी आत्मा में ही चेष्टारूप हैं, ये चारों आत्मा ही की अवस्था हैं, इसलिए आचार्य कहते हैं कि तेरे आत्मा ही का शरण है।

"

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#105

एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य पाहुडं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं ।।106।।

जिनवर कथित यह मोक्षपाहुड जो पुरुष अति प्रीति से ।
अध्ययन करें भावें सुनें वे परमसुख को प्राप्त हों ।।१०६।।

इस प्रकार जिनदेव के कहे हुए मोक्षपाहुड़ को भक्तिभाव से जो पढ़ते हैं, सुनते हैं, चिंतवनरूप भावना करते हैं वे शाश्वत सुख (मोक्ष) पाते हैं।

मोक्ष पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

“

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

मोक्ष पाहुड जी

”

“

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

”

ॐ नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

लिंग पाहुड जी

#1

"

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण ॥1॥

कर नमन श्री अरिहंत को सब सिद्ध को करके नमन ।
संक्षेप में मैं कह रहा हूँ, लिंगपाहुड शास्त्र यह ॥१॥

कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं कि मैं अरहन्तों को और वैसे ही सिद्धों को नमस्कार करके तथा जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है इस प्रकार पाहुडशास्त्र को संक्षेप में कहूँगा ।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

"

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥2॥

धर्म से हो लिंग केवल लिंग से न धर्म हो ।
समभाव को पहिचानिये द्रवलिंग से क्या कार्य हो ॥२॥

धर्म सहित तो लिंग होता है, परन्तु लिंग मात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है, इसलिए हे भव्यजीव ! तू भावरूप धर्म को जान और केवल लिंग ही से तेरा क्या कार्य होता है अर्थात् कुछ भी नहीं होता है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#3

“

जो पावमोहिदमदी लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसदि लिंगिभावं लिंगिम्मिय णारदो लिंगी ॥3॥

परिहास में मोहितमती धारण करें जिनलिंग जो ।
वे अज्ञजन बदनाम करते नित्य जिनवर लिंग को ॥३॥

जो जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर देव के लिंग नग्न दिगम्बर-रूप को ग्रहण करके लिंगीपने के भाव को उपहसता है -- हास्यमात्र समझता है वह लिंगी अर्थात् भेषी जिसकी बुद्धि पाप से मोहित है वह नारद जैसा है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#4

“

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥५॥

जो नाचते गाते बजाते वाद्य जिनवर लिंगधर ।
हैं पाप मोहितमती रे वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥४॥

जो लिंगरूप करके नृत्य करता है, गाता है, वादित्र बजाता है, सो पाप से मोहित बुद्धिवाला है, तिर्यंचयोनि है, पशु है, श्रमण नहीं है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

"

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥5॥

जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से ।
वे पाप मोहितमती हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥5॥

जो निर्ग्रंथ लिंग धारण करके परिग्रह को संग्रह-रूप करता है अथवा उसकी वांछा चिंतवन ममत्व करता है और उस परिग्रह की रक्षा करता है उसका बहुत यत्न करता है, उसके लिये आर्त्तध्यान निरंतर ध्याता है, सो पाप से मोहित बुद्धिवाला है, तिर्यंच-योनि है, पशु है, वह श्रमण नहीं है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

“

कलहं वादं जूवा णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥6॥

अर कलह करते जुआ खेलें मानमंडित नित्य जो ।
वे प्राप्त होते नरकगति को सदा ही जिन लिंगधर ॥६॥

जो लिंगी बहुत मान कषाय से गर्वमान हुआ निरंतर कलह करता है, वाद करता है, द्यूत-क्रीड़ा करता है वह पापी लिंग-रूप-धारण द्वारा भी पाप करता हुआ नरक को प्राप्त होता है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

"

पाओपहदंभावो सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकंतारे ॥7॥

जो पाप उपहत आत्मा अब्रह्म सेवैं लिंगधर ।
वे पाप मोहितमती जन संसारवन में नित भ्रमें ॥७॥

लिंग धारण करके पाप से घात किया गया है आत्म-भाव जिसने और अब्रह्म का सेवन करता है वह पाप से मोहित बुद्धिवाला संसार-रूपी वन में भ्रमण करता है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#8

"

दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि ॥४॥

जिनलिंगधर भी ज्ञान-दर्शन-चरण धारण ना करें ।
वे आर्तध्यानी द्रव्यलिंगी नंत संसारी कहे ॥८॥

यदि लिंगरूप करके दर्शन ज्ञान चारित्र को तो उपधानरूप नहीं किये (धारण नहीं किये) और आर्त्तध्यान को ध्याता है तो ऐसा लिंगी अनन्त संसारी होता है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#९

"

जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥९॥

रे जो करावें शादियाँ कृषि वणज कर हिंसा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ॥९॥

जो गृहस्थों के परस्पर विवाह जोड़ता है, संबंध करता है, कृषिकार्य खेती बाहना किसान का कार्य, वाणिज्य व्यापार अर्थात् वैश्य का कार्य और जीवघात अर्थात् वैद्यकर्म के लिए जीवघात करना अथवा धीवरादि के कार्यों को करता है, वह लिंगरूप धारण करके ऐसे पापकार्य करता हुआ पापी नरक को प्राप्त होता है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#10

“

चोराण लाउराण य जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं ॥10॥

जो चोर लाबर लड़ावें अर यंत्र से क्रीडा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ॥१०॥

जो चोरों के और झूठ बोलने वालों के युद्ध और विवाद कराता है और तीव्र-कर्म जिनमें बहुत पाप उत्पन्न हो ऐसे तीव्र कषायों के कार्यों से तथा यंत्र अर्थात् चौपड़, शतरंज, पासा, हिंदोला आदि से क्रीड़ा करता रहता है, वह लिंगी नरक जाता है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#11

"

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं ॥११॥

ज्ञान-दर्शन-चरण तप संयम नियम पालन करें ।
पर दुःखी अनुभव करें तो जावें नियम से नरक में ॥११॥

दर्शन ज्ञान चारित्र में, तप, संयम, नियम नित्य-कर्म अर्थात् आवश्यक आदि क्रिया, इन क्रियाओं को करता हुआ वर्तमान में दुःखी होता है वह लिंगी नरक वास पाता है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

"

कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥12॥

कन्दर्प आदि में रहें अति गृद्धता धारण करें ।
हैं छली व्याभिचारी अरे ! वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥१२॥

जो लिंग धारण करके भोजन में भी रस की गृद्धि अर्थात् अति आसक्तता को करता रहता है, वह कंदर्प आदिक में वर्तता है, उसके काम सेवन की वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक प्रचुर मात्रा में बढ़ जाते हैं तब 'लिंगव्यवायी' अर्थात् व्यभिचारी होता है, मायावी अर्थात् कामसेवन के लिए अनेक छल करना विचारता है, जो ऐसा होता है वह तिर्यंचयोनि है, पशुतुल्य है, मनुष्य नहीं है, इसलिए श्रमण भी नहीं है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#13

"

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण भुञ्जदे पिंडं।
अवरपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो ॥13॥

जो कलह करते दौड़ते हैं इष्ट भोजन के लिये ।
अर परस्पर ईर्षा करें वे श्रमण जिनमार्गी नहीं ॥१३॥

जो लिंगधारी पिंड अर्थात् आहार के निमित्त दौड़ता है, आहार के निमित्त कलह करके आहार को भोगता है, खाता है और उसके निमित्त अन्य से परस्पर ईर्ष्या करता है, वह श्रमण जिनमार्गी नहीं है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#14

“

गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो ॥।५॥

बिना दीये ग्रहें परनिन्दा करें जो परोक्ष में ।
वे धरें यद्यपि लिंगजिन फिर भी अरे वे चोर हैं ॥१४॥

जो बिना दिया तो दान लेता है और परोक्ष पर के दूषणों से पर की निंदा करता है वह जिनलिंग को धारण करता हुआ भी चोर के समान श्रमण है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

“

उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण।
इरियावह धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥15॥

ईर्या समिति की जगह पृथ्वी खोदते दौड़ें गिरें ।
रे पशूवत उठकर चलें वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥१५॥

जो लिंग धारण करके ईर्यापथ सोधकर चलना था उसमें सोधकर नहीं चले, दौड़कर चलता हुआ उछले, गिर पड़े, फिर उठकर दौड़े और पृथ्वी को खोदे, चलते हुए ऐसे पैर पटके जो उससे पृथ्वी खुद जाय इस प्रकार से चले सो तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, मनुष्य नहीं है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

“

बंधो णिरओ संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥16॥

जो बंधभय से रहित पृथ्वी खोदते तरु छेदते ।
अर हरित भूमि रोंधते वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ॥१६॥

जो लिंग धारण करके वनस्पति आदि की हिंसा से बंध होता है, उसको दोष न मानकर बंध को नहीं गिनता हुआ सस्य अर्थात् अनाज को कूटता है और वैसे ही वसुधा अर्थात् पृथ्वी को खोदता है तथा बारबार तरुगण अर्थात् वृक्षों के समूह को छेदता है, ऐसा लिंगी तिर्यंच-योनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

❝

रागं करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेदि।
दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।17।।

राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें ।
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।।१७।।

जो लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह के प्रति जो निरंतर राग प्रीति करता है और पर को (कोई अन्य निर्दोष हैं उनको) दोष लगाता है वह दर्शनज्ञान रहित है, ऐसी लिंगी तिर्यंचयोनि है, पशु समान है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।

❞

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#18

“

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।।४।।

श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो ।
हीन विनयाचार से वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ।।१८।।

जो लिंगी दीक्षा-रहित गृहस्थों पर और शिष्यों में बहुत स्नेह रखता है और आचार अर्थात् मुनियों की क्रिया और गुरुओं के विनय से रहित होता है वह श्रमण नहीं है तिर्यंच-योनि है, पशु है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#19

"

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो ॥१९॥

इस तरह वे भ्रष्ट रहते संयतों के संघ में ।
रे जानते बहुशास्त्र फिर भी भाव से तो नष्ट हैं ॥१९॥

पूर्वोक्त प्रकार प्रवृत्ति सहित मुनिवर संयमियों के मध्य भी निरन्तर रहता है और बहुत शास्त्रों को भी जानता है तो भी वह भावों से नष्ट है, श्रमण नहीं है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

"

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देदि वीसट्ठो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो ॥20॥

पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिलावर्ग में ।
रत ज्ञान-दर्शन-चरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग हैं ॥२०॥

जो लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह में उनका विश्वास करके और उनको विश्वास उत्पन्न कराके दर्शन ज्ञान चारित्र को देता है उनको सम्यक्त्व बताता है, पढ़ना-पढ़ाना, ज्ञान देता है, दीक्षा देता है, प्रवृत्ति सिखाता है, इस प्रकार विश्वास उत्पन्न कराके उनमें प्रवर्तता है वह ऐसा लिंगी तो पार्श्वस्थ से भी निकृष्ट है, प्रगट भाव से विनष्ट है, श्रमण नहीं है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

"

पुंच्छलिघरि जो भुञ्जइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो ॥21॥

जो पुंश्चली के हाथ से आहार लें शंशा करें ।
निज पिंड पोसें बालमुनि वे भाव से तो नष्ट हैं ॥२१॥

जो लिंगधारी पुंश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री के घर पर भोजन लेता है, आहार करता है और नित्य उसकी स्तुति करता है कि यह बड़ी धर्मात्मा है इसके साधुओं की बड़ी भक्ति है इस प्रकार से नित्य उसकी प्रशंसा करता है इस प्रकार पिंड को (शरीर को) पालता है वह ऐसा लिंगी बालस्वभाव को प्राप्त होता है, अज्ञानी है, भाव से विनष्ट है, वह श्रमण नहीं है।

"

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

“

इय लिंगपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं ॥22॥

सर्वज्ञ भाषित धर्ममय यह लिंगपाहुड जानकर ।
अप्रमत्त हो जो पालते वे परमपद को प्राप्त हों ॥२२॥

इस प्रकार इस लिंगपाहुड शास्त्र का सर्वबुद्ध जो ज्ञानी गणधरादि उन्होंने उपदेश दिया है उसको जानकर जो मुनि धर्म को कष्टसहित बड़े यत्न से पालता है, रक्षा करता है वह उत्तम स्थान मोक्ष को पाता है।

”

लिंग पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव
विरचित

लिंग पाहुड जी

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

ॐ नमः सिद्धेभ्य

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

शील पाहुड जी

#1

वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पायं।
तिविहेण पणमिऊण सीलगुणाणं णिसामेह ।।1।।

विशाल जिनके नयन अर रक्तोत्पल जिनके चरण ।
त्रिविध नम उन वीर को मैं शील गुण वर्णन करूँ ।।१।।

कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं कि केवलदर्शन केवलज्ञान रूप विशालनयन हैं जिनके, चरण रक्त कमल के समान कोमल हैं जिनके, ऐसे अंतिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमानस्वामी परम भट्टारक को मन वचन काय से नमस्कार करके शील अर्थात् निज-भावरूप प्रकृति उसके गुणों को अथवा शील और सम्यग्दर्शनादिक गुणों को कहूँगा ।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#2

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥2॥

शील एवं ज्ञान में कुछ भी विरोध नहीं कहा ।
शील बिन तो विषयविष से ज्ञानधन का नाश हो ॥२॥

शील के और ज्ञान के, ज्ञानियों ने विरोध नहीं कहा है और विशेष है वह कहते हैं -- शील के बिना इन्द्रियों के विषय हैं वह ज्ञान को नष्ट करते हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#3

दुक्खे णज्जदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥3॥

बड़ा दुष्कर जानना अर जानने की भावना ।
एवं विरक्ति विषय से भी बड़ी दुष्कर जानना ॥३॥

प्रथम तो ज्ञान ही दुःख से प्राप्त होता है, कदाचित् ज्ञान भी प्राप्त करे तो उसको जानकर उसकी भावना करना, बारंबार अनुभव करना दुःख से (दृढ़तर सम्यक् पुरुषार्थ से) होता है और कदाचित् ज्ञान की भावना सहित भी जीव हो जावे तो विषयों को दुःख से त्यागता है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#4

“

ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं ॥५॥

विषय बल हो जबतलक तबतलक आतमज्ञान ना ।
केवल विषय की विरक्ति से कर्म का हो नाश ना ॥४॥

जब तक यह जीव विषयों के वशीभूत रहता है तब तक ज्ञान को नहीं जानता है और ज्ञान को जाने बिना केवल विषयों में विरक्तिमात्र ही से पहिले बँधे हुए कर्मों का क्षय नहीं करता है।

”

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#5

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्व ॥5॥

दर्शन रहित यदि वेष हो चारित्र विरहित ज्ञान हो ।
संयम रहित तप निरर्थक आकास-कुसुम समान हो ॥५॥

ज्ञान यदि चारित्र रहित हो तो वह निरर्थक है और लिंग का ग्रहण यदि दर्शन रहित हो तो वह भी निरर्थक है तथा संयम रहित तप भी निरर्थक है इस प्रकार ये आचरण करे तो सब निरर्थक है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#6

णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ ॥6॥

दर्शन सहित हो वेश चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो ।
संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो ॥६॥

ज्ञान तो चारित्र से शुद्ध और लिंग का ग्रहण दर्शन से शुद्ध तथा संयम सहित तप ऐसे थोड़ा भी आचरण करे तो महा फलरूप होता है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#7

णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता ।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा ॥7॥

ज्ञान हो पर विषय में हों लीन जो नर जगत में ।
रे विषयरत वे मूढ़ डोलें चार गति में निरन्तर ॥७॥

कई मूढ़ मोही पुरुष ज्ञान को जानकर भी विषय रूप भावों में आसक्त होते हुए चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करते हैं, क्योंकि विषयों से विमोहित होने पर ये फिर भी जगत में प्राप्त होंगे इसमें भी विषय कषायों का ही संस्कार है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#8

जे पुण विसयविरtta णाणं णाऊण भावणासहिदा।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्त ण संदेहो ॥8॥

जानने की भावना से जान निज को विरत हों ।
रे वे तपस्वी चार गति को छेदते संदेह ना ॥८॥

जो ज्ञान को जानकर और विषयों से विरक्त होकर उस ज्ञान की बारबार अनुभवरूप भावना सहित होते हैं वे तप और गुण अर्थात् मूलगुण उत्तरगुण युक्त होकर चतुर्गति रूप संसार को छेदते हैं, काटते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#१

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण ॥१॥

जिसतरह कंचन शुद्ध हो खड़िया-नमक के लेप से ।
बस उसतरह हो जीव निर्मल ज्ञान जल के लेप से ॥१॥

जैसे कांचन अर्थात् सुवर्ण खडिय अर्थात् सुहागा (खड़िया क्षार) और नमक के लेप से विशुद्ध निर्मल कांतियुक्त होता है, वैसे ही जीव भी विषय कषायों के मलरहित निर्मल ज्ञानरूप जल से प्रक्षालित होकर कर्म रहित विशुद्ध होता है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#10

णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणं वि मंदबुद्धीणं।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति ।।10।।

हो ज्ञानगर्भित विषयसुख में रमें जो जन योग से ।
उस मंदबुद्धि कापुरुष के ज्ञान का कुछ दोष ना ।।१०।।

जो पुरुष ज्ञानगर्वित होकर ज्ञानमद से विषयों में रंजित होते हैं सो यह ज्ञान का ही दोष नहीं है वे मंदबुद्धि कुपुरुष हैं, उनका दोष है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#11

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं ॥११॥

जब ज्ञान, दर्शन, चरण, तप सम्यक्त्व से संयुक्त हो ।
तब आतमा चारित्र से प्राप्ति करे निर्वाण की ॥११॥

ज्ञान का दर्शन का और तप का सम्यक्त्व-भाव सहित आचरण यदि हो तो चारित्र से शुद्ध जीवों को निर्वाण की प्राप्ति होती है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#12

सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाण दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ।।12।।

शील रक्षण शुद्ध दर्शन चरण विषयों से विरत ।
जो आत्मा वे नियम से प्राप्ति करें निर्वाण की ।।१२।।

जिन पुरुषों का चित्त विषयों से विरक्त है, शील की रक्षा करते हैं, दर्शन से शुद्ध हैं और जिनका चारित्र दृढ़ है ऐसे पुरुषों को ध्रुव अर्थात् निश्चय से नियम से निर्वाण होता है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#13

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं ।।13।।

सन्मार्गदर्शी ज्ञानि तो है सुज्ञ यद्यपि विषयरत ।
किन्तु जो उन्मार्गदर्शी ज्ञान उनका व्यर्थ है ।।१३।।

जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखाने वाले ज्ञानी हैं और विषयों से विमोहित हैं तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है, परन्तु जो उन्मार्ग को दिखाने वाले हैं उनकी तो ज्ञान की प्राप्ति भी निरर्थक है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#14

कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
शीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ॥१५॥

यद्यपि बहुशास्त्र जाने कुमत कुश्रुत प्रशंसक ।
रे शीलव्रत से रहित हैं वे आत्म-आराधक नहीं ॥१४॥

जो बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं और कुमत कुशास्त्र की प्रशंसा करने वाले हैं वे शीलव्रत और ज्ञान रहित हैं, वे इनके आराधक नहीं हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#15

रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वलावण्णकंतिकलिदाणं।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म ॥15॥

रूप योवन कान्ति अर लावण्य से सम्पन्न जो ।
पर शीलगुण से रहित हैं तो निरर्थक मानुष जनम ॥१५॥

जो पुरुष यौवन अवस्था सहित हैं और बहुतों को प्रिय लगते हैं ऐसे लावण्य सहित हैं, शरीर की कांति प्रभा से मंडित है और सुन्दर रूप लक्ष्मी संपदा से गर्वित हैं, मदोन्मत्त हैं, परन्तु वे यदि शील और गुणों से रहित हैं तो उनका मनुष्य जन्म निरर्थक है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#16

वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेसु सुयं उत्तमं शीलं ।।।6।।

व्याकरण छन्दरु न्याय जिनश्रुत आदि से सम्पन्नता ।
हो किन्तु इनमें जान लो तुम परम उत्तम शील गुण ।।१६।।

व्याकरण, छंद, वैशेषिक, व्यवहार, न्यायशास्त्र/ ये शास्त्र और श्रुत अर्थात् जिनागम इनमें श्रुत अर्थात् जिनागम को जानकर भी, इनमें शील हो वही उत्तम है ।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#17

सीलगुणमंडिदाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए ॥17॥

शील गुण मण्डित पुरुष की देव भी सेवा करें ।
ना कोई पूछे शील विरहित शास्त्रपाठी जनों को ॥१७॥

जो भव्यप्राणी शील और सम्यग्दर्शनादि गुण से मंडित है वह देवों के भी उनका देव भी वल्लभ होते हैं, उनकी सेवा देव भी करते हैं, जो श्रुतपारग अर्थात् शास्त्र के पार पहुँचे हैं, ग्यारह अंग तक पढ़े हैं, ऐसे बहुत हैं और उनमें कई शीलगुण से रहित हैं, दुःशील हैं, विषय- कषायों में आसक्त हैं वे तो लोक में 'अल्पका' अर्थात् न्यून हैं, वे मनुष्यों के भी प्रिय नहीं होते हैं तब देव कहाँ से सहायक हो ?

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#18

सव्वे वि य परिहीणा रूवणिरूवा वि पडिदसुवया वि।
सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं ।।।४।।

हों हीन कुल सुन्दर न हों सब प्राणियों से हीन हों ।
हों वृद्ध किन्तु सुशील हों नरभव उन्हीं का सफल है ।।१८।।

जो सब प्राणियों में हीन हैं, कुलादिक से न्यून हैं और रूप से विरूप हैं, सुन्दर नहीं हैं, 'पतितसुवयसः' अर्थात् अवस्था से सुन्दर नहीं है, वृद्ध हो गये हैं, परन्तु जिनमें शील सुशील है, स्वभाव उत्तम है, कषायादिक की तीव्र आसक्तता नहीं है उनका मनुष्यपना सुजीवित है, जीना अच्छा है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#19

“

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो ॥१९॥

इन्द्रियों का दमन करुणा सत्य सम्यक् ज्ञान-तप ।
अचौर्य ब्रह्मोपासना सब शील के परिवार हैं ॥१९॥

जीवदया, इन्द्रियों का दमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, तप ये सब शील के परिवार हैं।

”

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#20

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धी य णाणसुद्धी य।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ॥20॥

शील दर्शन-ज्ञान शुद्धि शील विषयों का रिपू ।
शील निर्मल तप अहो यह शील सीढ़ी मोक्ष की ॥२०॥

शील ही विशुद्ध निर्मल तप है, शील ही दर्शन की शुद्धता है, शील ही ज्ञान की शुद्धता है, शील ही विषयों का शत्रु है और शील ही मोक्ष की सीढ़ी है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#21

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावरजंगमाण घोराणं।
सव्वेसिं पि विणासदि विसयविसं दारुणं होई ॥21॥

हैं यद्यपि सब प्राणियों के प्राण घातक सभी विष ।
किन्तु इन सब विषयों में है महादारुण विषयविष ॥२१॥

जैसे विषय सेवनरूपी विष विषयलुब्ध जीवों को विष देने वाला है वैसे ही घोर तीव्र स्थावर जंगम सब ही विष प्राणियों का विनाश करते हैं तथापि इन सब विषों में विषयों का विष उत्कृष्ट है, तीव्र है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#22

वारि एक्कम्मि य जम्मे मरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो।
विसयविसपरिहयाणं भमंति संसारकंतारे ॥22॥

बस एक भव का नाश हो इस विषम विष के योग से ।
पर विषयविष से ग्रसितजन चिरकाल भववन में भ्रमें ॥२२॥

विष की वेदना से नष्ट जीव तो एक जन्म में ही मरता है, परन्तु विषयरूप विष से नष्ट जीव अतिशयतया - बारबार संसाररूपी वन में भ्रमण करते हैं। (पुण्य की और राग की रुचि वही विषयबुद्धि है)।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#23

णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणवेसु दुक्खाइं।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासिया जीवा ॥23॥

अरे विषयासक्त जन नर और तिर्यग् योनि में ।
दुःख सहें यद्यपि देव हों पर दुःखी हों दुर्भाग्य से ॥२३॥

विषयों में आसक्त जीव नरक में अत्यंत वेदना पाते हैं, तिर्यंचों में तथा मनुष्यों में दुःखों को पाते हैं और देवों में उत्पन्न हों तो वहाँ भी दुर्भाग्यपना पाते हैं, नीच देव होते हैं, इस प्रकार चारों गतियों में दुःख ही पाते हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#24

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खवंति विसयं विस व खलं ॥24॥

अरे कुछ जाता नहीं तुष उड़ाने से जिसतरह ।
विषय सुख को उड़ाने से शीलगुण उड़ता नहीं ॥२४॥

जैसे तुषों के चलाने से, उड़ाने से मनुष्य का कुछ द्रव्य नहीं जाता है वैसे ही तपस्वी और शीलवान् पुरुष विषयों को खल की तरह क्षेपते हैं, दूर फेंक देते हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#25

वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ॥25॥

गोल हों गोलार्द्ध हों सुविशाल हों इस देह के ।
सब अंग किन्तु सभी में यह शील उत्तम अंग है ॥२५॥

प्राणी के देह में कई अंग तो वृत्त अर्थात् गोल सुघट प्रशंसायोग्य होते हैं, कई अंग - खंड अर्थात् अर्द्ध गोल सदृश प्रशंसा योग्य होते हैं, कई अंग भद्र अर्थात् सरल सीधे प्रशंसा योग्य होते हैं और कई अंग विशाल अर्थात् विस्तीर्ण चौड़े प्रशंसा योग्य होते हैं, इस प्रकार सब ही अंग यथास्थान सुन्दर पाते हुए भी सब अंगों में यह शील नाम का अंग ही उत्तम है, यह न हो तो सब ही अंग शोभा नहीं पाते हैं, यह प्रसिद्ध है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसार भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं ॥26॥

भव-भव भ्रमें अरहट घटीसम विषयलोलुप मूढजन ।
साथ में वे भी भ्रमें जो रहे उनके संग में ॥२६॥

जो कुमत से मूढ़ हैं वे ही अज्ञानी हैं और वे ही विषयों में लोलुपी हैं / आसक्त हैं, वे जैसे अरहट में घड़ी भ्रमण करती है वैसे ही संसार में भ्रमण करते हैं, उस पुरुष के साथ अन्य जनों के भी संसार में दुःख सहित भ्रमण होता है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#27

आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसयरागरंगेहिं।
तं छिन्दन्ति कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण ॥27॥

इन्द्रिय विषय के संग पढ़ जो कर्म बाँधे स्वयं ही ।
सत्पुरुष उनको खपावे व्रत-शील-संयमभाव से ॥२७॥

जो विषयों के रागरंग करके आप ही कर्म की गाँठ बांधी है उसको कृतार्थ पुरुष (उत्तम पुरुष) तप संयम शील के द्वारा प्राप्त हुआ जो गुण उसके द्वारा छेदते हैं ,खोलते हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#28

उदधी व रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं।
सोहेंतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो ।।28।।

ज्यों रत्नमंडित उदधि शोभे नीर से बस उसतरह ।
विनयादि हों पर आत्मा निर्वाण पाता शील से ।।२८।।

जैसे समुद्र रत्नों से भरा है तो भी जलसहित शोभा पाता है वैसे ही यह आत्मा तप, विनय, शील, दान इन रत्नों में शीलसहित शोभा पाता है क्योंकि जो शीलसहित हुआ उसने अनुत्तर अर्थात् जिससे आगे और नहीं है ऐसे निर्वाणपद को प्राप्त किया।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#29

सुणहाण गद्दहाण ण गोवसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं ॥29॥

श्वान गर्दभ गाय पशु अर नारियों को मोक्ष ना ।
पुरुषार्थ चौथा मोक्ष तो बस पुरुष को ही प्राप्त हो ॥२९॥

आचार्य कहते हैं कि यह सब लोग देखो श्वान गर्दभ इनमें और गौ आदि पशु तथा स्त्री इनमें किसी को मोक्ष होना दीखता है क्या ? वह तो दीखता नहीं है। मोक्ष तो चौथा पुरुषार्थ है इसलिए जो चतुर्थ पुरुषार्थ को सोधते हैं, उन्हीं के मोक्ष का होना देखा जाता है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं ॥30॥

यदि विषयलोलुप ज्ञानियों को मोक्ष हो तो बताओ ।
दशपूर्वधारी सात्यकीसुत नरकगति में क्यों गया ॥३०॥

जो विषयों में लोल अर्थात् लोलुप आसक्त और ज्ञानसहित, ऐसे ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो तो दश पूर्व को जानने वाला रुद्र नरक को क्यों गया ?

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#31

जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिद्दिट्ठो।
दसपुव्वियस्स भावो य ण किं पुणु णिम्मलो जादो ॥31॥

यदि शील बिन भी ज्ञान निर्मल ज्ञानियों ने कहा तो ।
दशपूर्वधारी रुद्र का भी भाव निर्मल क्यों न हो ॥३१॥

जो शील के बिना ज्ञान ही से विसोह अर्थात् विशुद्ध भाव पंडितों ने कहा हो तो दश पूर्व को जानने वाला जो रुद्र उसका भाव निर्मल क्यों नहीं हुआ, इसलिए ज्ञात होता है कि भाव निर्मल शील ही से होते हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण ।।32।।

यदि विषयविरक्त हो तो वेदना जो नरकगत ।
वह भूलकर जिनपद लहे यह बात जिनवर ने कही ।।३२।।

विषयों से विरक्त है सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गँवाता है वहाँ भी अति दुःखी नहीं होता है और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है ऐसा जिन वर्द्धमान भगवान् ने कहा है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#33

“

एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं ॥33॥

अरे! जिसमें अतीन्द्रिय सुख ज्ञान का भण्डार है ।
वह मोक्ष केवल शील से हो प्राप्त - यह जिनवर कहें ॥३३॥

पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार (बहुत प्रकार) जिनके प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन पाये जाते हैं और जिनके लोक-अलोक का ज्ञान है ऐसे जिनदेव ने कहा है कि शील से अक्षातीत / इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख है, ऐसा मोक्षपद होता है।

”

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#34

“

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं ॥34॥

ये ज्ञान दर्शन वीर्य तप सम्यक्त्व पंचाचार मिल ।
जिम आग ईंधन जलावे तैसे जलावें कर्म को ॥३४॥

सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, तप, वीर्य ये पंच आचार हैं वे आत्मा का आश्रय पाकर पुरातन कर्मों को वैसे ही दग्ध करते हैं जैसे कि पवन सहित अग्नि पुराने सूखे ईंधन को दग्ध कर देती है।

”

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#35

णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता ॥35॥

जो जितेन्द्रिय धीर विषय विरक्त तपसी शीलयुत ।
वे अष्ट कर्मों से रहित हो सिद्धगति को प्राप्त हों ॥३५॥

जिन पुरुषों ने इन्द्रियों को जीत लिया है इसी से विषयों से विरक्त हो गये हैं और धीर हैं परिषहादि उपसर्ग आने पर चलायमान नहीं होते हैं, तप विनय शील सहित हैं वे अष्टकर्मों को दूर करके सिद्धगति जो मोक्ष उसको प्राप्त हो गये हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#36

लावण्यसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो स महप्पा भमिज्ज गुणवित्थरं भविए ।।36।।

जिस श्रमण का यह जन्म तरु सर्वांग सुन्दर शीलयुत ।
उस महात्मन् श्रमण का यश जगत में है फैलता ।।३६।।

जिस मुनि का जन्म रूप वृक्ष लावण्य अर्थात् अन्य को प्रिय लगता है ऐसा सर्व अंग सुन्दर तथा मन वचन काय की चेष्टा सुन्दर और शील अर्थात् अंतरंग, मिथ्यात्व विषय रहित परोपकारी स्वभाव- इन दोनों में प्रवीण निपुण हो वह मुनि शीलवान् है, महात्मा है, उसके गुण का विस्तार लोक में भ्रमता है, फैलता है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#37

णाणं झाणं जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं।
सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं ॥37॥

ज्ञानध्यानरु योगदर्शन शक्ति के अनुसार हैं ।
पर रत्नत्रय की प्राप्ति तो सम्यक्त्व से ही जानना ॥३७॥

ज्ञान, ध्यान, योग और दर्शन की शुद्धता ये तो वीर्य के आधीन हैं और सम्यग्दर्शन से जिनशासन में बोधि को प्राप्त करते हैं, रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#38

जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तवोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति ।।38।।

जो शील से सम्पन्न विषय विरक्त एवं धीर हैं ।
वे जिनवचन के सारग्राही सिद्ध सुख को प्राप्त हो ।।३८।।

जिनने जिनवचनों से सार को ग्रहण कर लिया है और विषयों से विरक्त हो गये हैं, जिनके तप ही धन है तथा धीर हैं ऐसे होकर मुनि शीलरूप जल से स्नान कर शुद्ध हुए वे सिद्धालय, जो सिद्धों के रहने का स्थान उसके सुखों को प्राप्त होते हैं।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#39

सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणापयडा ॥39॥

सुख-दुख विवर्जित शुद्धमन अर रज से रहित जो ।
वह क्षीणकर्मा गुणमयी प्रकटित हुई आराधना ॥३९॥

सर्वगुण जो मूलगुण उत्तरगुणों से जिसमें कर्म क्षीण हो गये हैं, सुख-दुःख से रहित हैं, जिसमें मन विशुद्ध है और जिसमें कर्मरूप रज को उड़ा दी है ऐसी आराधना प्रगट होती है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

#40

अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ॥40॥

विषय से वैराग्य अर्हतभक्ति सम्यक्दर्श से ।
अर शील से संयुक्त ही हो ज्ञान की आराधना ॥४०॥

अरहंत में शुभ भक्ति का होना सम्यक्त्व है, वह कैसा है ? सम्यग्दर्शन से विशुद्ध है तत्त्वार्थों को निश्चय व्यवहार स्वरूप श्रद्धान और बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बररूप का धारण तथा उसका श्रद्धान ऐसा दर्शन से विशुद्ध अतीचार रहित निर्मल है ऐसा तो अरहंत भक्तिरूप सम्यक्त्व है, विषयों से विरक्त होना शील है और ज्ञान भी यही है तथा इससे भिन्न ज्ञान कैसा कहा है ? सम्यक्त्व शील बिना तो ज्ञान मिथ्या ज्ञानरूप अज्ञान है।

शील पाहुड जी , आचार्य कुंदकुंद देव

इति श्री

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित

शील पाहुड जी

जय जिनेन्द्र!

धन्यवाद!

यदि किसी प्रकार की अशुद्धि हो तो निम्न ईमेल पर संपर्क करे।

infinitejainism@gmail.com